आनन्दामृतवर्षिणी

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई.

आनन्दामृतवर्षिणी

★

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजक स्वामी आनन्दगिरिकृत

जिसमें

अतिसुगम अतिपवित्र अतिगुप्त सब विद्याधर्मोंमें श्रेष्ठ

प्रत्यक्षफलानुभविक ब्रह्मतत्त्व वर्णित है।

★

मुद्रक एवं प्रकाशक:

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

संस्करण : सन् २००२, सम्वत् २०५९

मूल्य : ३५ रूपये मात्र

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

॥ श्रीः ॥

आनन्दामृतवर्षिणीकी·

अनुक्रमणिका।

द्वितीय अध्यायका संक्षेप ।

कनिष्ठ भेद करके जीवन्मुक्तका लक्षण विदेह मुक्तिका लक्षण ज्ञान उपरति वैराग्यका हेतु आदि चार चार भेद करके फलके सहित लक्षण ज्ञानी ब्रह्मवित्का ब्रह्मवि-दादि भेद करके चार प्रकारका लक्षण है। प्रथम मुक्ति आदिका लक्षण लिखकर फिर ज्ञानकी सात भूमिका लिखकर फिर श्रुति स्मृति आदि प्रमाणपूर्वक और अनेक दृष्टान्त युक्ति शंका समाधान पूर्वक इस बातकूं सिद्ध कियाहै जो कनिष्ठ जीवन्मुक्त किसी हेतुसे संपा-दन न होसके तो विदेहमुक्तिमें सन्देह नहीं है ॥

चौथे अध्यायका ७१ के पृष्ठमें प्रारम्भ हुआ ८२ के पृष्ठमें समाप्त हुआ उसमें अन्तरंग बहिरंग भेद-करके बहुत ज्ञानके साधन लिखे हैं ॥

पांचवें अध्यायका ८३ के पृष्ठमें प्रारम्भ हुआ ९१ के पृष्ठमें समाप्त हुआ उसमें सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुणका लक्षण और यज्ञ तप सुख दान कर्मादिका सत्त्वादि भेद-करके तीन तीनप्रकारका भेद फलके सहित लिखाहै ॥

छठे अध्यायका ९१ के पृष्ठमें प्रारम्भ हुआ १०२ के पृष्ठमें समाप्त हुआ उसमें श्रुति स्मृति युक्ति दृष्टान्त आदिसे प्रमा-णपूर्वक इस बातकूं सिद्ध किया है कि मुक्तिका साधन मुख्य ज्ञान है कर्मादि परम्परा करके गौण हैं और

जीव ब्रह्मकी एकता पूर्णतादि में बहुत वादी की शंकाहैं सबका श्रुति स्मृति आदि प्रमाणपूर्वक समाधान किया है॥

सातवें अध्याय का १०२ के पृष्ठमें प्रारम्भ हुआ ११४ केपृष्ठमें समाप्त हुआ। उसमें जीवात्मा परमात्मा का लक्षण और जीव ब्रह्मकी ऐक्यता और ऐक्यता पूर्णता नित्यमुक्तादि सिद्धिमें बहुत दृष्टान्त हैं और जो जो वादीने शंका करी सबका श्रुति स्मृति आदि प्रमाणपूर्वक समाधान किया॥

आठवें अध्यायका ११४ के पृष्ठमें प्रारंभ हुआ १२२ के पृष्ठमें समाप्त हुआ। उसमें 'अहं ब्रह्मास्मि' इस अभ्यास करनेके साधन लिखे हैं और मुख्य तात्पर्य वेद शास्त्रोंका किस मतमें है और क्या है और श्रुतियोंका अविरोध और यो सब जो हम कहते हैं इसका भलेप्रकार शारीरिक भाष्यमें निश्चय होसकताहै यो प्रसंग है और कर्म उपासनादि में जो मुख्य मुक्तिके साधन हैं उनका निश्चय और वेदान्त शास्त्रके मतसे मुक्ति संसार परमेश्वर जीवका जो लक्षण उसकूं दृष्टान्त इतिहास युक्ति श्रुति स्मृति आदि प्रमाणपूर्वक सिद्धि किया है और संसारमुक्ति परमेश्वर जीवका नैया, यक; सांख्य, पूर्वमीमांसा शास्त्रवाले औरभी बौद्धादि जैसा जैसा कहते है उनका मत भी किंचित् संक्षेप करके लिखा है॥

नवें अध्यायका १३४ के पृष्ठमें प्रारम्भ हुआ १४१ के पृष्ठमें समाप्त हुआ उसमें अज्ञान का लक्षण और अज्ञानका कारण जो आसुरी सम्पत्के अवगुण उनका वर्णन और कामक्रोधादि कूं ज्ञानकी सिद्धिके लिये और पीछे ज्ञानकेजीवन्मुक्तिकी सिद्धिके लियेत्यागना चाहिये इस बातमें गुरु शिष्यका सम्बाद है॥

दशवें अध्यायका १४१ पृष्ठमें प्रारम्भ हुआ १६० के पृष्ठमें समाप्त हुआ। उसमें जीवन्मुक्तिके पांच प्रयोजन और अन्तष्करणके निरोध का प्रकार और जीवन्मुक्ति के साधन लिखेहैं। फिर श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराजकी कृपासे आनन्दामृतवर्षिणी समाप्त है॥

इत्यनुक्रमणिका॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

आनन्दाऽमृतवर्षिणी ।

★

मूल ।

श्रीसच्चिदानन्दस्वरूप जो इन्दिरेश्वर ।

टी०—श्री लक्ष्मी और शोभा और माया कूं कहते हैं तीनों करके अर्थ लगताहै सच्चिदानन्द लक्ष्मीपति शोभावान् मायाके स्वामी माया करके युक्त परंतु विशेष योंहै सच्चिदानन्द मायाके स्वामी सच्चिदानन्दमें तीन पद हैं सत् चित आनन्द अब यों देखना चाहिये तीन पद क्यों कहे इसका यों कारणहै जो केवल सत कहते तो न्यायशास्त्रवाले आकाशकूंभी सत् कहते हैं सो वह जड़ है इसलिये चित् भी कहा वह दुःखरूप वा आनन्द रूप है इसलिये आनन्द भी कहा और सत्ता दो प्रकारकी है व्यावहारिकी परमार्थिकी व्यावहारिक सत्ता वहहै जो देहादिमें है और परमार्थिकी सत्ता जो सच्चिदानन्द ब्रह्ममें है इस जगह पारमार्थिकी सत्तासे प्रयोजनहै इसी प्रकार चैतन्यता आनन्दता भी व्यावहारिकी पारमार्थिकी भेदसे दो प्रकारकी है ॥

मू०—इन्दीबर इन्द्र मणी की सदृस जो सुन्दर रमा करके लालितहैं पादपंकज जिन्हों के ऐसे जो ॥

टी०—इन्दीबर इन्द्रमणी दो विशेषण देनेका यह प्रयोजन है भक्तोंके लिये तो इन्दीवरकी सदृश कोमल और दुष्टोंके लिये इन्द्रमणीके सदृश कठिन है ॥

मू०–रामेश्वर और बन्दीकियेहैं इन्द्रके रिपुओंके वृन्द जिन्होंने ऐसे जो सुरेश्वर और आनन्द है वीर्य्य जिन्होंका ऐसे जो परमेश्वर और मन्द मुसुकान करके आनन्दकियेहैं लोकोंके वृन्द जिन्होंने ऐसे जो नन्दजीके नन्दन और आत्मरूप करके चिंतवन करते हैं जिन्होंकूँ सनत्कुमार, सनातन, सनक, सनन्दन और चंद्रवंशमें भक्तोंके लिये अवतारहै जिन्होंका ऐसे जो श्रीकृष्णचन्द्र वसुदेवजीके नन्दन उन्होंको मैं वन्दन करताहूं हे अमरवर आपके गुणोंके अन्तका नहीं जाननेवाला ॥

टी०–परमेश्वरके गुण दो प्रकारके हैं प्रथममें दो भेद हैं ऐसे जैसे अज अव्यक्त अद्वैत अमरादि जो निषेधकरके कहेजाते हैं दूसरे सत् चित् आनन्दादि जो प्रतिपादन करके कहेजाते हैं और दूसरे राम कृष्णादि सगुण ब्रह्मके गुण श्याम शान्ताकार करुणाकर भक्तवत्सलादि ॥

मू०–जो नर उसकी स्तुति जो आपके सदृश न हो तो क्या आश्चर्य है क्योंकि ब्रह्मादिकी भी स्तुति आपके सदृश नहीं है और जो यों कहो यथामति स्तुति करनेवाले सब निर्दोष हैं तो हे दीनार्तिहर ! मेरा जो इस आनन्दाऽमृतवर्षिणीके लिखनेमें परिकर सोभी निर्दोष है हे भगवन् ! आपकी महिमा मन वाणीका तो विषय नहींहै और वेदभी अतद्व्यावृत्ति करके चकित हुए आपकी महिमा कूं कहते हैं सो ॥

टी०—अतद्व्यावृत्तिका अर्थ यों है कहेकूं आवृत्तिविशेष कहे कूं व्यावृत्ति औ अतत्के वारम्वार कहेकूं अतद्व्यावृत्ति कहतेहैं अतत्का अर्थ योंहै नहीं है तत् सो नहींहै तत् ब्रह्मकूं कहते हैं तात्पर्य्य यों है श्रुतिने कहकह कर जो निपेध कियाहै सो नहीं है इसीकूं अतद्व्यावृत्ति कहते हैं शास्त्रकी रीतिसे अतत्का अतद् बोला जाता है॥

मू०—महिमा किसके स्तुति करने योग्य है और आपके कितने गुणहैं यों कौन कहसके फिर आप किसका विषय हो सकते हैं परन्तु अर्वाचीन पदके अर्थात् अवर पदके॥

टी०—जिस करके जानाजावे उसको पद कहते हैं ब्रह्मके दो पद हैं एक अवर अर्थात उरला सगुण दूसरा पर अर्थात् परला निर्गुण॥

मूल०—विषयमें किसका मन नहीं लगताहै औरकिस-की वाणी यों नहीं चाहतीहै कि परमेश्वरका कीर्तन करना चाहिये परन्तु विना आत्महत्यारेके संसारमें तीन प्रका-रके पुरुषहैं युक्त १ मुक्तिकी इच्छा वाले २ विषयी ३ मुक्त तो शुक सनकादि ज्ञानी जन सदा आपके गुणोंका कीर्तन करते रहते हैं मुक्तजन ब्रह्मानन्दकूं अनुभव करते हुए स्मरण करते हैं कि यों ब्रह्मानन्द परमेश्वरकी कृपाहै और मुक्तिकी इच्छावालोंकूं संसाररूप रोगकी योंही परमेश्वरका कीर्तन करना परम औषधि है २ और विषयी जनोंकूं आपके चरित्र विहारादि परमप्रिय लगते हैं हे भक्तप्रिय! बृहस्पति आदिकी जो स्तुति क्या आप कूं

आश्चर्य्यहै तात्पर्य्य कुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि समस्त परम अमृतरूप मधुर कोमल २ वाणी सब आपहीकी कहानीहैं और जो यों कही फिर तुम्हारी वाणी क्या आश्चर्य होगी हे परमेश्वर ! मेरी बुद्धिमें तो यों अर्थ निश्चय कियाहै अपनी वाणीकूं आपके गुणोंका कथन करके पवित्र करताहूं प्रार्थना यों है हे कृष्णचन्द्र ! मेरी यों बालककीसी हठ जानकर आपने सर्वप्रकार क्षमा करनी ग्रन्थके आदि मध्य अन्तमें निर्विघ्न समाप्तिके लिये और आस्तिकमार्ग प्रवृत्तिके लिये शिष्टाचारानुमित और श्रुतिबोधित जो तीन प्रकारका आशीर्वाद वस्तु निर्देश होताहै सो यहांतक मंगलाचरण है ॥

विद्वान्‌जनोंसे प्रार्थना यों है जो यों मेरी भाषामें लिखाहै जो श्रुति स्मृति वेदान्तशास्त्रसे विरुद्ध हो तो अंगीकार नहीं करना और जो किसी जगह प्रकरणसंगति पुनरुक्ति आदि दोष प्रतीत होतेहों तो बनादेने और जो यों भाषा अच्छी न होवे और तात्पर्य्य वक्ताका भलेप्रकार न प्रतीत होता हो तो जैसी विद्वान् पसन्द करे वैसीही लिखदेनी और परमेश्वरके स्वरूपका जो इसके विचारमें चिंतवन करनेमें आता है इस गुण करके अंगीकार करना योग्यहै कुछ वाणीकी चतुराई तो इसमें है नहीं और जो कहीं बुद्धिके भ्रमसे अन्यथा लिखागया हो

उसको बना देना तात्पर्य्य सबप्रकार आपकोही क्षमा करनी योग्यहै मेरे अभिप्रायकूं विचारना चाहिये वक्ताका इसके लिखनेमें क्या अभिप्राय है सो सुनो मैंही लिखे देताहूं श्रीकृष्णचन्द्रने गीताशास्त्रमें कहाहै इस गीता शास्त्रकूं जो मेरे भक्तोंकूं धारण करावेगा तो मेरे विषय परमभक्ति करके मुझकूं प्राप्त होवेगा और स्वामी विद्यारण्यभारतीतीर्थजीने पञ्चदशीमें कहा है किसी उपाय करके ब्रह्मका सदा चिन्तवन करना जो एकान्तमें बैठना तो ब्रह्महीका चिन्तवन करना और जो दूसरेसे परस्पर बात करनी तो ब्रह्महीकी करनी और जो किसीकूं कथन करना तो ब्रह्महीका करना यों जो एकपर होनाहै इसीकूं विद्वान् ब्रह्माऽभ्यास कहतेहैं सो मुझकूं जो उपाय ब्रह्मके चिन्तवन करनेका अच्छा प्रतीत होताहै ॥

पञ्चदशी वेदान्तसार तत्त्वानुसन्धान श्रीभगवद्गीता टीका सहित और आत्मबोधादि पोथी समीप रखकर जितनी मेरी बुद्धि थी उन्होंकूं विचार जो सीधा खुलासा अर्थ बालकोंकी समझमें आवे ओ अर्थ आनन्दामृतवर्षिणीमें लिखाहै बुद्धिमानसे इस आनन्दामृतवर्षिणीकूं एक बेर श्रद्धा भक्ति करके और चित्तकूं एकाग्र करके कुतर्कके विना सद्गुरुसेजैसेगुरुदेवकीगीतामें लिखे हैं तात्पर्य वेदशास्त्रके तात्पर्य्यकूं जाननेवाले और ब्रह्मनिष्ठ उन्होंसे सुननायोग्यहै जो केवल वेदशास्त्रार्थके

जाननेवाले हैं और ब्रह्मनिष्ठ नहीं वे विज्ञान अनुभव नहीं कहसकेंगे और जो केवल ब्रह्मनिष्ठ हैं वे युक्त दृष्टांतशंका समाधानपूर्वक नहीं कहसकेंगे इसलिये वेद शास्त्रार्थके जाननेवाले और ब्रह्मनिष्ठ गुरुओंसे सुनना योग्यहैजो इस में अनुष्ठान कहाहै उसकूं सुननेवालेकी इच्छा होकरो वा मतकरो तात्पर्य्य यहहै जो सुनेगा तो अपने आनन्दके लिये आपही अनुष्ठानकरेगा दृष्टांत कहतेहैं एकराजाथा कभी पण्डितोंकूं कुछ न देता था न कभीकथासुनता था किसी विद्वान्ने सब पंडितोंसे कहा कि तुम राजासे कहो हेराजन्!आपहमारीकथासुनोधनदो वा न दो पण्डितोंने कहा महाराज वृथा अनधिकारीसे कौन माथा मारे प्रयोजनके विना तो मन्द भी नहींप्रवृत्त होताहै विद्वान्ने उन्होंकूं दृष्टांत दिया जो केली गेहकी देहलीमें तरुण स्त्री दूध पी हुई किसी प्रकार प्राप्त हो जावो फिर मैथुनकीइच्छा करो वा मतकरो अब दृष्टांत और दार्ष्टान्त विचारो क्या वो राजा पाषाण है जो पण्डितोंकी कथा सुनकर मुक्ति के लिये धर्म दानादि नहींकरेगा और क्या वो स्त्री पत्थर है कि उसकूं ऐसी जगे अपने आनन्दके लिये कामका आविर्भाव नहीं होगा ऐसेही क्या इस ग्रंथका सुननेवाला पाषाण है जो निरतिशय आनन्दके अनुष्ठान न करेगा

टी०–जिसके सिवाय और किसी जगह ब्रह्मलोकादिमें आनन्दनहीं

मू०—जो अर्थ इस आनन्दामृतवर्षिणीमें लिखना है उसकी संगतिके लिये जहां यों लिखेंगे प्रथम ज्ञानके चार साधन हैं यहां तक उपोद्घात कथाहै सो सुनो ॥

टी०—वाञ्छित अर्थकूं मनमें रखकर प्रथम और प्रसंग कहना ॥

मू०—जो एक चैतन्य महानंद शुद्धब्रह्म नित्यमुक्त सो मायोपहित हुआ ईश्वर १ और वोही चैतन्य समष्टि सूक्ष्म उपाधि करके उपहित हिरण्यगर्भ २ और वोही चैतन्य समष्टि स्थूल उपाधि करके उपहित विराट् ३ इन तीन भावोंकूं प्राप्त होता भया और ओही चैतन्य अविद्योपहित हुआ प्राज्ञ १ और व्यष्टि सूक्ष्म उपाधि करके उपहित तैजस २ और व्यष्टि स्थूल उपाधि करके उपहित विश्व ३ इन तीन भावोंकूं नाना प्रकार का जीव होता भया फिर ईश्वर जीवोंके धर्म अर्थ काम मोक्षके लिये सृष्टि स्थिति संहारकूं करते भये धर्मादिमें मोक्ष मुख्यहै और तीनि धर्मादि गौणहैं और धर्मादि तीनके दो दो फलहैं मुख्य फल परम्परा करके तीनोंका मोक्षहै और स्वर्गादि गौणहै धर्मका मुख्य फल मोक्षहै और स्वर्गादि गौणहैं स्वर्गादि फल जो वेदोंमें कहे हैं वे ऐसे हैं जैसे बालककी शोभाके लिये कानछेदन कराना और मोदकादिको फल कथन करदेना अभिप्राय तो उन्होंका जो है सो है श्रुतिमाताके सदृश हित॥

टी०—परिणाम अन्तमें सुखहो जिसके ॥

मू०—चाहने वालीहै जैसे किसीका पुत्र रस्तेकी मृत्तिका खाया करता था उसकीमाताने उसकूं बहुतबरजा उसने न माना हारकर माताने कहा हे पुत्र! यों गंगाजीकी मृत्तिका खायाकर बहुत सुंदरहै विचारो माताका अभिप्राय गंगाजीके मृत्तिकाके खिलानेमें नहीं है रस्तेकी मृत्तिकाके वर्जनेमें उसका अभिप्राय है ऐसेही जो मूर्खजीव रस्तेकी मृत्तिकाकी नाईं शब्दादि विषयोंकूं इष्ट जानताहै श्रुतिनेयोंसमझा इनविषयोंसे तो स्वर्गादि अच्छे हैं तात्पर्य्यतो श्रुतिका मुक्तिमें है इसी हेतुसे मोक्ष मुख्यहै और उपासना इस लिये है किसीका पुत्र जगह जगह वृथा फिरता था समेसिर नहीं हाथ आता था उसके पिताने विचार कर पुत्रसे कहा कि तू इस मकानपर बैठा रहाकर कुछ उसकूं लालच देदिया तात्पर्य्य जब काम पड़ेगा यहांसेबुलालूंगा वैसेहीयों मनकाहीं यज्ञ दानादिके फल स्वर्गादिमें कही शब्दादि विषयोंमें मृगतृष्णावत भूला भागाभागा फिरता था कभी श्रम नहीं होता था जो आत्मस्वरूपका विचार करे इसी लिये श्रुतिमें एकाग्रचित्तके लिये उपासना कही है विचारदेखो एकाग्रचित्तके विना श्रवण मनन निदिध्यासन ये जो मुख्य साधन मुक्तिके हैं सो नहीं होसकते हैं १ इसीप्रकार अर्थजो अशरफी रुपयादि करके जगत्में प्रसिद्ध होना और जगत्के सुख सम्पादन करने गौणहैं और रुपयादि खर्च करके धर्म करना

कथा श्रवण करना सन्तोंका संग करना तीर्थोंकासेवन करना मुख्यफल उन्होंका भी परम्परा करके मोक्षहै २ ऐसेही काम अपने सुखके लिये खाना पीना और आनन्द-के लिये स्त्रीका संग और स्थान वस्त्रादिमें जो सुख बुद्धि से गौण और भोजनादि वास्ते धर्मके और श्रवणादिके लिये शरीरकी रक्षाकरनी और स्त्रीका संग वास्ते पुत्रकी उत्पत्तिके वोभी किसी अशंमें मुक्तिका हेतुहै इसका भी परम्परा करके मुख्यफल मोक्ष है ३ तात्पर्य्य संसारमें-पुरुषार्थ मुख्य मोक्ष है वे जो अविद्योपहित जीव उन्होंमें-से श्रुति स्मृति जो परमेश्वरकी आज्ञा हैं उन्होंकू जो करते भये उन्होंकी उपासनाके लिये जैसी उन्होंकू मूर्ति परमेश्वरकी वांछित हुई वेही मायोपहित ईश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य्य, शक्ति, गणेशादि मूर्त्तिकूं धारण करते भये सो मूर्त्ति कैलास वैकुण्ठादिमें और भक्तोंके हृदयमें सदा वास करती रहती हैं वे जो विष्णु भगवान् हैं सो भक्तों के उद्धारके लिये जो ऐसे भक्तहैं कि सदा जो परमेश्वरकी आज्ञा उसकूं करके शुद्ध किया है अन्तःकरण जिन्होंने और शम दमादि साधनों करके युक्त मोक्षकी इच्छावाले परन्तु बहुत गंभीर जो ऋग्, यजु, साम, अथर्वण वेद उनके विचारनेमें असमर्थ और विना विचार-के ज्ञान नहीं होता है जैसे पदार्थका भानु विना प्रकाशके इसलिये उनकूं ब्रह्मतत्त्व विचारनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्र

अवतार लेकर चारों वेदोंका अर्थ जो किमुख्य मोक्षका साधन है अर्जुनके निमित्त करके गीता शास्त्र रचते भये और वेही विष्णु व्यासदेव अवतार लेकर भागवतादि पुराण भारतादि इतिहास रचते भये जिन्होंमें कर्म उपासना ज्ञान तीनों हैं प्रसंगसे गीताकूंभी महाभारतके बीचमें लिखा और जो वेदान्त वेदोंका सिद्धान्त जिसकूं वेदोंका मस्तक कहते हैं उस सिद्धान्तकूं फिर सूत्रोंमें कथन करते भये तात्पर्य्य कई कई श्रुतियोंका अर्थ एक एक सूत्रमें संक्षेप करके कहा वे जो सूत्र और गीता शास्त्र उनका जो अर्थ सोभी बहुत गम्भीर और परमेश्वरका अभिप्राय परमेश्वर जाने या जिसपर उनकी कृपाहो वो जाने पीछे उनके कलियुगके जीवनने हठ करके पण्डिताईके बलसे अपने अपने मतमें व्याससूत्र और गीताजीका अर्थ बनालिया जो अभिप्राय श्रीकृष्णचन्द्र और व्यासदेवजीका था वह सिद्ध न हुआ ज्ञानकाण्ड जो साक्षात् मुक्तिका हेतु था लोप होगया तब सब देवता विष्णु ब्रह्मादि जुरकर श्रीमहादेवजीके पास गये सारी व्यवस्था कही महादेवजीने कहा हम वेदमार्गकी प्रवृत्तिके लिये अवतार लेंगे आपभी सब ब्रह्मा इन्द्रादि अवतारलोफिर महादेवजी महाराज तो श्रीशंकराचार्य्य नाम करके और विष्णुजी सनन्दन नाम करके और ब्रह्माजी मण्डनमिश्र नाम करके सरस्वतीजीके सहित और इन्द्र सुधन्वा रा-

जा नाम करके तात्पर्य इसी प्रकार बहुत देवता अवतार लेते भये क्योंकि जब ज्ञानकाण्डका लोप होताहै तब महादेवजी अवतार लिया करते हैं और सब मतवालों- से शास्त्रार्थ करके सब झूंठे मतोंका खण्डन करके जो सार सिद्धान्तवेद भगवान्का है उसको स्थापन किया करतेहैं राजाका अवतार इसलिये हुआ जो शास्त्रार्थमें झुंठी कु- तर्क और हठ करेगा और शास्त्रार्थ होकर उसका मत खण्डन होजावे फिर दुराग्रहसे न माने अथवा बहुत जुर- कर सामना करें तो राजा उनकूं दंडदेंगे पीछे अवतारकूं ५।६ वर्षकी अवस्थामें श्रीशंकराचार्य्यजीने संन्यास लेकर १६ वर्षकी अवस्थामें १६ भाष्यरचे१० उपनिषद्पर ११ भाष्य व्यास सूत्रोंपर एक शारीरक भाष्य विष्णु- सहस्रनामभाष्य गीता सनत सुजात भाष्य नृसिंहता- पिनी भाष्य तात्पर्य्य उपनिषद् गीतादिका अर्थ भले प्रका श्रुति स्मृति युक्ति दृष्टान्त प्रमाण देदेकर सिद्ध किया और जो गीता भाष्यादिके विचारनेमें असमर्थ देखे उनके लिये आत्मबोधादि छोटे छोटे प्रकरणोंमें वोही अर्थ संक्षेपकर लिखते भये फिर सब वादियोंकूं शास्त्रार्थमें जय करके दिग्विजय करते भये जो वेदोंका सार सिद्धान्त था उसकूं प्रकट प्रचार करते भये ऐसा ऐसा शास्त्रार्थ हुआ चालीस दिनतक मण्डन मिश्रसे चरचा रही मण्डन मिश्रकी स्त्री सरस्वतीजीका अवतार साक्षी थी उसने

पुष्पोंकी माला दोनोंके गलेमें डाल दी थी कहदिया था जिसकी माला सूखेगी वोही हारेगा चालीस दिनके पीछे मण्डनमिश्रकी माला सूखगई इसीप्रकार बहुत जगह शास्त्रार्थ हुआ और चारों दिशोंमें महाराज गये उनके अबतक ज्योयशी आदि मठ चारोंदिशोंमें विद्य-मान हैं और कपाली आदिने जो सामना किया वे कुछ महाराजने मंत्रोंसे मारे कुछ राजाने मारे विस्तार इस कथाका तीन दिग्विजय ग्रंथ हैं उनमें बहुत है तात्पर्य यों है जो अच्छे बुद्धिमान हैं उनके लिये तो शारीरक भाष्यादि बड़े २ ग्रंथ रचे और और जो मन्दबुद्धि हैं उनके लिये आत्मबोधादि छोटे छोटे प्रकरण रचकर ३२ वर्षकी अवस्थामें महाराज तो कैलासकूं जाते भये फिर जो पद्म पादादि महाराजके मुख्य शिष्य थे उन्होंनेभी बहुत ग्रन्थ रचे स्वामी आनन्दगिरिजीने तो सब भाष्यादि ग्रन्थों पर टीका करी और सुरेश्वराचार्य महाराजने वार्तिक बनाया पीछे उनके स्वामी शंकरानन्दभगवान् और विद्या-रण्यादि जीने आत्म पुराण और पंचदशी वेदान्तसारादि बहुत सहस्राणि ग्रन्थ रचे वे ग्रंथ अबतक तो परमेश्वरकी कृपासे सूर्यवत् इस लोकमें प्रकाश रहेहैं ॥

अब इस समयमें ऐसे जो परमेश्वरके भक्त कि जिनकी गुरू परमेश्वर श्रद्धा भक्ति और उनकी यथाशक्ति आज्ञा करनी परन्तु आत्मबोधादि प्रकरणोंके विचारने

में भी असमर्थ उनकूं सुखपूर्वक ब्रह्मतत्त्व विचारनेके लिये और मुख्य मुंशी वंशीधर जी कायस्थ भटनागरके रहनेवाले श्रीगंगा यमुनाजीके मध्यमें इंद्रप्रस्थसे २२ कोश पूर्व दिशामें श्रीकन्दरापुरी प्रसिद्ध सिकन्दराबादके लिये कैसेहैं वे मुन्शीसाहबकि जिन्हों रूप लक्ष्मी विद्या तेज हुक्म और साम दान क्षमा औदार्यादि बहुत गुणकरके युक्त पतिव्रता स्त्री फिर यों आश्चर्यकि ऐसे समयमें सत्संगी परमेश्वरमें भक्ति गांभीर्यादि गुण करके युक्त तात्पर्य्य ऐसे सज्जन बुद्धिमान् इस समयमें होने कठिनहैं जिनकूं व्यवहारमें राज और परमार्थमें विद्वान् सराहना करतेहैं उन्होंकी श्रद्धा भक्ति पूर्वक प्रार्थनासे उन्होंके उपवन अन्तर्गत मकान कोठीमें ठहरकर और श्रीस्वामी आत्मागिरिजीमहाराज रहनेवाले प्रथमगुजरातके जिनकूं वेदान्तशास्त्रका अर्थ करामलकवत्है उनकी सहायसे श्रीमत्परमहंसपरिव्राजक स्वामी मलूकगिरिजी महाराजका अनुचर शिष्यस्वामीजीके चरणकमलोंकापूजनेवाला मैं आनंदगिरि इस 'आनंदाऽमृतवर्षिणीका' बनाने वाला स्वामीजी और श्रीकृष्णचन्द्र महाराजकी कृपासे आत्मबोधादि छोटे छोटे प्रकरणोंमेंजो मैंने अर्थ सुनाहै उसमेंसे भी स्वल्प यथामति और श्रीमद्गीताकाभी अर्थ किसी किसी जगह इसआनंदामृतवर्षिणीमें लिखूंगा॥

प्रथम ज्ञानके मुख्य चार साधन हैं उनकूं लिखतेहैं॥

विवेक १ वैराग्य २ शमादि षट्क सम्पत्तिः ३ मुमुक्षुता ४ अर्थ इनका योंहै ॥

इस संसारमें नित्य अनित्य क्याहै और विचार करते करते यों निश्चय करना कि आत्मा नित्य और आत्मासे पृथक् सब अनित्यहै १ यहांके देखे सुने जो पदार्थ स्त्री चन्दनमालादि परलोकके जो सुने अमृत नन्दनवन देवांगनादि सबकूं अनित्य दुःखदायी जानकर मनकी इच्छापूर्वक सबकूं त्याग-देना फिर उनमें दीनता न होनी ब्रह्मलोककूं तृणवत् जानना २ तीसरेमें ६ भेद हैं शम १ दम २ उपरति३ तितिक्षा ४ श्रद्धा ५ समाधान ६ इनका अर्थ याहै मन आदि अन्तःकरणकी संकल्पादि वृत्तियोंकूं रोकना वेदान्तशास्त्रके श्रवण मनन निदिध्यासनके विना ३ श्रोत्रादि इन्द्रियोंकूं शब्दादि विषयोंसे रोकना देह यात्रा और श्रवणादिके विना २ यम नियमादि साधनोंसे अन्तःकरणकूं निरोध करके ॥

टी०—अहिंसा १ चोरी न करनी २ सत्य बोलना ३ ब्रह्मचर्य्य ४ अपरिग्रह अर्थात् शरीर यात्रासे सिवाय संग्रह न करना५ इन पांचका नाम नियम है ॥

और शौच १ संतोष २ तप ३ स्वाध्याय अर्थात् प्रणवका जप ४ ईश्वर प्रणिधान अर्थात् परमेश्वरमें भक्ति५इन पांचका नाम नियम है ॥

मू०—सब लौकिक वैदिक कर्मोंसे उपराम होना ब्रह्म-

तत्त्व विचारनेके लिये देहयात्रामात्र क्रिया करनी और जाग्रत् अवस्था सुषुप्तिवत् रहनी इसीका नाम उपरती है ३ श्रवणादिमें जो जो दुःख सुख पड़े सब कूं सहजाना ४ जो वेदान्तशास्त्र और गुरु ज्ञानके देनेवाले कहते हैं उन्होंमें विश्वास करना कि इसी प्रकारहैं ५ श्रवणादिके समय भलेप्रकार चित्तकूँ समाधान करना ६ तीसरे साधनके भेद होचुके चौथे साधनका यों अर्थ है मुक्तिको मुख्य पुरुषार्थ समझकर मुक्तिकी नित्य इच्छा रखनी ॥

मुक्तिके ये चार साधन मुख्यहैं और सब साधनोंका इनहीमें अन्तर्भावहै जो इनका भलेप्रकार अनुष्ठान करे तो और किसी साधनकी अपेक्षा नहींहै सब साधनोंका यों तत्त्वहै ॥

ग्रंथमें जो चार अनुबन्ध होतेहैं उनकूँ लिखतेहैं ॥

अधिकारी १ विषय २ सम्बन्ध ३ प्रयोजन ४ इनहीं चार साधनों करके जो सम्पन्नहो सो इस ग्रंथके पढ़ने सुननेका अधिकारी १ जीव ब्रह्मकी एकता इसमें विषयहै २ यो ग्रंथबोधक और ग्रंथबोध्य इन दोनोंका बोध्यबोधक भाव इसमें सम्बंधहै ३ सब शोक दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति जिसकूँ मोक्ष कहते हैं यों इसका प्रयोजनहै ४ इसमें दृष्टांत योंहै जैसे रसोईमें अन्नका भूखा तो अधिकारी १ और जो अन्नमें मधुरादि स्वादहैं सो विषय २

और अन्न बरतनादिका संयोग सम्बन्ध ३ भूँखका दूर हो जाना प्रयोजन ४ जो कोई कहै तुम ब्रह्म २ कहतेहो दिखाओ आपका ब्रह्म कहां और कैसाहै जैसे नास्तिक केवल प्रत्यक्ष प्रमाण मानताहै जो बात मूर्खताकी है सोई सुनो जैसे किसी वस्तुके सद्भावमें एक प्रत्यक्ष प्रमाणहै ऐसे और भी अनुमानादि प्रमाणहैं प्रथम तो प्रत्यक्ष प्रमाण दो प्रकारकाहै बाहर १ भीतर २ बाहर ज्ञानेन्द्रियों करके शब्दादि विषयोंका और पंचभूतोंका ज्ञान होताहै परंतु नेत्र करके तो रूपका पृथ्वी जल तेजकाही ज्ञान होता है और रूपके विना शब्दादि चार विषयोंका और वायु आकाशका नेत्रसे ज्ञान नहीं होता है १ और भीतर दुःख सुख भूख शोकादिका ज्ञान अन्तःकरण करके होताहै और सुषुप्तिमेंजो अज्ञान उसका ज्ञान साक्षी चैतन्य करके होताहै उस पूर्वपक्षीसे बूझना चाहिये कि, दुःख सुखादि जिसकूँ होतेहैं क्या वो नेत्रसे दिखासकताहै और जो कहे कि दुःखादिकूं नेत्रसे कौन दिखा सके तो हम कहते हैं ब्रह्मकूं नेत्रसे कौन दिखासके और श्रीकृष्ण-चन्द्रादि जो मूर्ति हैं वे मायामय मूर्ति हैं क्योंकि जो वेदशास्त्रोंका सिद्धांत है कि जो दृश्यहै सो अनित्य है "गोगोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानो भाई" जो उन मूर्तियों कूं कोई परमार्थसे सच्ची कहे तो वे मूर्ति अनित्य हैं परमेश्वर कूं वेद शास्त्र

नित्य कहतेहैं तात्पर्य्य परमेश्वर वास्तव अमूंत है जैसे दुःखादि अन्तःकरण करके जानेजातेहैं सूक्ष्मदर्शी पुरुषोंकूं सूक्ष्म बुद्धि करके अन्तर्मुख वृत्ति करके और प्रत्यक्षादि प्रमाण करके प्रमेय चैतन्यका अपरोक्ष होसकता है वेदान्तशास्त्रमें ६ प्रमाणहैं प्रत्यक्ष १ अनुमान २ उपमान ३ शाब्द ४ अर्थापत्ति ५ अनुपलब्धि ६ इनका अर्थ भाषामें भले प्रकार लिखनेसे बहुत विस्तार होता है इसलिये नाममात्र रस्ता दिखाते हैं प्रत्यक्षका अर्थ तो पीछे लिखागया अनुमानसे इस प्रकार सो॥

टी०--अनुमानके पांच अंगहै पक्ष १ साध्य २ हेतु ३ व्याप्ति ४ दृष्टांत ५ इसलिये पंचावयवी अनुमान कहा जाता है जैसे पक्ष १ कियो पर्वत -साध्य २ अग्निवाला हेतु ३ धूमहोनेसे--व्याप्ति ४ जहां जहां धूम होता है वहां निश्चय अग्नि होती है--दृष्टांत ५ जैसे रसोईके मकानमें॥

मू०—ज्ञान होता है कोई मनुष्य जंगलमें चला जाता है अग्निकी इच्छा हुई देखा पर्वतमें धूम उठ रहा है वो अनुमान करता है वो पर्वत अग्निवालाहै धूम होनेसे जहां जहां धूम होता है वहां वहां निश्चय अग्नि होतीहै जैसे रसोईके मकानमें बिचार देखो अग्नि प्रत्यक्ष नहीं है परन्तु पर्वतमें अग्निका होना प्रमाणहै २ उपमा करके इसप्रकार ज्ञान होताहै गवय एकपशु होता है एक पुरुषने उसकूं कभी नहीं देखाथा नामसुनाथा उसने किसी जंगली

आदमीसे पूछा कि गवय कैसा होताहै जंगलीने उत्तर दिया कि गौकी सदृश होताहै कुछ एक अंतर होताहै वो पुरुष एकदिन जंगलमें गया उसने गवयकूं देखा उसगवयकूं देखकर उस बातको स्मरण किया कि गौकी सदृश होताहै निश्चय येही गवय है विचारदेखो गवयका जान लेना प्रमाणहै ३ शब्दप्रमाण दो प्रकारका है वैदिक १ लौकिक दो वेदोंने जो कहा सो वैदिक प्रमाणहै जो यों शंका करे कि वेदोंने तो जीव ईश्वरका भेदभी कहाहै और अनेक श्रुति कर्म उपासनादि करके मोक्षका होना कहती हैं और बहुत श्रुति अन्नमय कोशकूं आत्मा कहतीहैं तो यों वेदोंका कहाहुआ आपके प्रमाणहैं या नहीं इसका उत्तर यों है जो श्रुतिअन्नमयादि कोशकूं आत्मा कहती हैं और जो कर्म उपासनादि करके मुक्तिका होना कहती हैं सबका अभिप्राय युक्तिसे अद्वैत ब्रह्मके बोधन करनेकाहै देहादिकूं परमार्थसे आत्मा कहना और जीव ईश्वरका भेद कहना और केवल कर्मउपासनादिसे मुक्तिका होजाना यों श्रुतिका तात्पर्य नहीं है क्योंकि फिर श्रुतिने निषेधभी किया है कि यों नहीं है २ इस वाक्य करके और बहुत सहस्र ऐसी ऐसी अर्थवाली श्रुतीहैं और जो यों शंका करे कि प्रथम श्रुतिने देहादिकूं निषेध किया प्रथमहीं एक निर्गुण ब्रह्मका उपदेशक्यों नकिया इसका उत्तर यों हैं जो श्रुति प्रथमहीं ब्रह्मका बोधन करती

तो ब्रह्मकूं अतिसूक्ष्म होनेसे इस जीवकूं ब्रह्मका कभी बोध न होता इसलिये श्रुतिने क्रमसे अर्थात् प्रथम कर्म करना कहा फिर उपासना कही और प्रथम अन्नमयादिकूं आत्मा कहा फिर आनंदमय कोशकूं आत्मा कहा जब जिज्ञासुकी बुद्धि आनन्दमयादिकूं विचारते विचारते अति सूक्ष्महुई तब निर्गुण ब्रह्मका उपदेश किया अब विचारो किश्रुतिका अन्नमयकोशादिकूं जो आत्मा कहना है और कर्मउपासनासे मुक्तिका होना यों परमार्थमें तो सच्चा नहीं परन्तु निर्गुण ब्रह्मकूं साक्षात् बोधन करनेवाली जो बहुत श्रुतिहैं उन्होंकी यह सब श्रुति उपयोगी हैं इसलिये वेदकाकहाहुआ सब प्रमाण है कोई श्रुति साक्षात् और कोई कर्म उपासनादि द्वारा परम्परा करके बोधन करती हैं मूर्खलोग वेदोंके तात्पर्यकूं नहीं विचारके एक एक देश वेदोंका सुनकर कोई देह कोई इन्द्रिय कोई विज्ञानमय कोशादिकूं आत्मा बताते हैं कोई केवल कर्मसे कोई केवल उपासनादि से मुक्तिका होना कहते हैं समस्त वेदों का तात्पर्य नहीं विचारते पूर्वपक्षकी श्रुतियोंकूं प्रमाण देदे वृथा बाद करते हैं जैसे कोई मूर्ख अच्छे वैद्यके समीप बैठा था उस समय एक पुरुष आया उसकूं बहुत चलनेसे हारपनकाज्वर था वैद्यने नाडी देखकर कहा कि मोहनभोग खाओ ज्वरजाता रहेगा उसकूं हारपनसे ज्वर था मोहनभोगके खानेसे जाता रहा उस

मूर्खने समझा कि विशेष करके धनवाले बीमार होतेहैं उनके लिये यह औषधि बहुत सुन्दरहै ऐसा निश्चय करके सब रोगियोंकूं मोहनभोग बताने लगा जिसकूं हारपन का ज्वर होवे तो अच्छा होजावे शेष मरजावें ऐसे ही बहुत मूर्ख एक एक दो दो ओषधि वैद्यसे सुनकर वैद्यक करने लगे न वैद्यके तात्पर्यकूं विचारा न रोगीके रोगकूं विचारा सबकूं एकही औषधि बताने लगे दैवयोगसे कोई कोई अच्छा भी होजावे इसी प्रकार मूर्खने वेदके तात्पर्य कूं न अधिकारीकूं विचारतेहैं केवल आजीविकाके लिये वैष्णव शैव शाक्तादि अपने अपने मतका उपदेश करके कहदेते हैं कि येही परमतत्त्व है औरौं की असूया करदेते हैं विचारो कि जो सबकूं एकदेवताका उपदेश करते हैं तो क्या सारी अवस्था में सबके एकही गुण सदा रहता है इस दृष्टांत कूं भले प्रकार विचारो वैद्य तो सद्गुरु की जगे कि जैसे प्रथमअध्याय में लिखेहैं और वैद्यककी पोथी वेद और शास्त्रोंकी जगे और रोगी मुमुक्षु की जगे क्योंकि तीनप्रकार का रोगहै कफ वायु पित्त और तीनहीं रोग इसजीवकू हैं सत्व रज तमोगुण तमोगुणीके लिये कर्म रजोगुणी के लिये उपासना सत्वगुणी के लिये ज्ञान वेदोंने कहाहै और उस मूर्ख की जगे इस कलियुग के ऐसे गुरु कि जो विना वेदान्तशास्त्रके पढ़ेहुए और विना वेदशास्त्रोंका तात्पर्य जानेहुए मूर्खोंकूं चेला करतेहैं उन-

कूं केवल अपनीक्षमाही से प्रयोजन है शिष्य दुःख भोगो या नरक भोगो सो शिवजीने पार्वतीजीसे कहाहै ॥

श्लोक । गुरवोबहवःसन्तिशिष्यवित्तापहारकाः ॥
दुर्लभःसगुरुर्देविशिष्यसन्तापहारकः ॥१॥

तात्पर्य वेद भगवान् का यों है जैसे व्यवहारमें मनुष्य सूक्ष्म बात कूं युक्ति करके कहते हैं ऐसे वेद भगवान् भी निर्गुण ब्रह्मकूं युक्ति करके बोधन करते हैं इस बातके स्फुट होने में मनुष्योंकी युक्तिकूं लिखते हैं शारीरक भाष्यमें स्थूलारुंधतीन्यायनाम करके यों युक्तिलिखीहै कुवाँरी लड़कीकूं सौभाग्यके अर्थ अरुंधती का दर्शन कराया करते हैं प्रथम उससे कहते हैं कि यों चन्द्र अरुंधती है जब वो चन्द्रकूं जानजाती है फिर कहते हैं कि यों अरुंधती नहीं है यह सात तारे अरुंधती हैं फिर वैसेही निषेध करके कहते हैं कि यह तीन तारे हैं फिर उन तीन तारोंमें से वशिष्ठजीकूं अरुंधती बताते हैं जब वो लड़की वशिष्ठजीकूं भले प्रकार जानजाती है पीछे उसकूं भी निषेध करके कहते हैं कि उस तारे के समीप जो बहुत सूक्ष्म ताराहै सो अरुंधती है जिसके भाग्य अच्छे होतेहैं उसको अरुंधती का दर्शन होजाता है अब विचारना चाहिये कि प्रथम चन्द्रादिकूं अरुंधती कहनाहै उनका अरुंधती के बताने में सब वाक्य उपकारीहैं इसलिये सब प्रमाण हैं जिसके माल

वो लड़की अरुंधती को जानजाती है पीछे उसकूं यों निश्चय होजाती है कि मेरे माता पिताने जो प्रथम चन्द्रादि कूं बताया था तात्पर्य उनका अरुंधती के बोधन करनेमें था दार्ष्टान्तमें फिर भलेप्रकार विचारना चाहिये योंतो वैदिक प्रमाण कहा और लौकिक व्यास वशिष्ठ आप्तकामादि पुरुषों का जो कहा है सो प्रमाण है लौकिक प्रमाणमें भी वोही अरुंधती न्यायहै इस समयमें भी आप्तकाम ब्रह्मवादी परमहंस संन्यासी विशेष करके हैं और जो इस लोकमें अच्छे गुण कहे जाते हैं कि जिनकूं सब मतवाले अंगीकार करते हैं और वेद वशिष्ठादि का परमसिद्धान्त है और मुक्तिके मुख्य अंतरंग साधन हैं निराकांक्ष शान्ति निरहंकार सन्तोष कोमलता विवेक वैराग्य निर्वैरता अमान परोपकार क्षमा शम दमादि ऐसे ऐसे गुण और विद्या और विज्ञान विशेष करके ब्रह्मवादी संन्यासी परमहंसोंहीमें पाते हैं इसलिये उनकूं आप्तकाम होनेसे उनके वाक्य प्रमाण हैं४ किसीसे बूझा कहो, जी भोजन करआये उन्होंने कहा हम भोजन दिनमें हीं करते हैं और हृष्टपुष्ट देखते हैं अर्थसे यों ज्ञान हुआ कि रात्रीकातो इन्होंने निषेध नहीं कियाहैं रात्रिकूं भोजन करते हैं विचारो ये ज्ञान सच्चाहै या नहीं इसका नाम अर्थापत्ति प्रमाण है५ किसीने कहा-तुम कहतेहो इस स्थानमें घटनहीं है इसमें क्या प्रमाण है उसने उत्तर दिया घटका लाभ न होनेसे अनुपलब्धि प्र-

माण है ६ तात्पर्य इन प्रमाणोंके लिखनेका यों है कि ब्रह्मके सिद्धकरनेमें ऐसे ऐसे प्रमाण और अनेक युक्ति-दृष्टान्त हैं प्रत्यक्ष वादि आदिकूं तो ऐसे ऐसे उत्तर देनेयोग्य हैं कि हे वादी विचार देख ब्रह्म ऐसे ऐसे प्रमाणों से देखनेमें आता है ॥

और भेदवादी उपासनावालों और कर्मवादी आदिकूं यों उत्तर देना योग्यहै जैसे वेद की दृष्टिसे तुम सूतकी आदि और परमेश्वर का दास मानते हो ऐसेही वेदने भी कहाहै तू ब्रह्महै जो यों कहो हम अभी इस योग्य नहीं हैं ऐसा कहे मैं ब्रह्महूं हम बूझते हैं किसी प्रतिबन्ध से तुमकूं महावाक्यार्थ अर्थात् मैंब्रह्महूं योंअपरोक्ष न होती यों कहो वेदान्तशास्त्र का श्रवणादि और मैं ब्रह्महूं ऐसी अनेक उपासना करनी कहां निषेध है और विचारो अभ्यास अनजान वस्तुका कहतेहैं और अभेद उपा-सना करनेमें छंदोग्य उपनिषदादि गीता भाष्यादि बहुत ग्रंथहैं उनमें ऐसी ऐसी उपासना करनेमें ब्रह्महूं मैं ईश्वर हिरण्यगर्भ विराट हूं भले प्रकार ब्रह्मलोकादि फलक सहित लिखीहैं और भेदउपासनामें बहुत जगे दोष कहे हैं और भलेप्रकार विचारो परिपूरण कूं परिछिन्न कहना कितना बड़ा अनर्थहै वेदोंमें प्रकट लिखा है शोक कूं आत्माकाजाननेवाला तरताहै १ उसी आत्मा कूं जान करके मृत्युकूं उल्लंघेगा और कोई रस्ता मुक्तिका नहीं

है२ कर्मधनपुत्र करके मुक्त नहीं होता है सबका त्यागही करके मुक्त होता है ३ ज्ञान के विना मुक्ति नहीं होती है ४ ऐसी ऐसी अर्थवाली बहुत श्रुति हैं फिर तुम कूं मैं ब्रह्महूं इस अर्थ ग्रहण करने में क्या करना योग्य है वेदों का तात्पर्य्य सुनो कर्म करके तमोगुण का नाश-होता है निद्रा, आलस्य, प्रमादादि तमोगुण का कार्य है प्रातः काल के स्नानादि कर्म करने से उनका नाश होता है व्रतादिककरनेसे इन्द्रियादिका दमन होता है दानादि करनेसे पदार्थोंमेंसे आसक्ति दूरहोतीहै तीर्थादि करने से घरके लोगों से प्रीति कमहोतीहै परदेश में जाकर बुद्धिबढ़तीहै तीर्थों में महत्पुरुषों का समागम होता है उनके सत्संग करने से संसार से चित्त उपराम होता है और भी बहुत इस प्रकारके कर्म कार्य्य हैं चित्तसे विचारने योग्य है अन्तःकरण का विषयों से उपराम होना इसी कूं अन्तःकरण की शुद्धि कहते हैं उपासना से रजोगुण का नाश होता है विक्षेप तृष्णा लोभादि रजोगुण का कार्य्य है ध्यानादि करके उनका नाश होता है ऐसेऐसे साधनोंसे बड़ा जो सत्वगुण उसकूं प्रकाशमय शान्तरूप होने से कार्य्य उसका विवेक, वैराग्य, शम, दमादि हैं इन साधन सम्पन्न होकर जगत् ब्रह्म, बन्ध मोक्ष नित्यानित्यादिका विचार किया विचार करने से यों ज्ञान हुआ कि ये सत्वादि तीनों गुण

माया के हैं मायाकूं मिथ्या होने से इन गुणोंका जितना कार्य्य स्थूल सूक्ष्म है सब मिथ्या है और मैं असंग सच्चिदानन्द नित्यमुक्त हूं इसीको ज्ञान कहते हैं योहीं ज्ञानमुक्तिका हेतु है और परमसिद्धांत तो वेदोंका यो है कि यह जगत् जीव ईश्वर प्रतिबिम्ब के सहित न कभी हुआ है न होगा न है एक मन वाणी करके अगोचर, प्रत्यगात्मा, नित्यानन्दरूप, नित्यमुक्त है न किसीका नाश, न उत्पत्ति, न देहके साथ सम्बन्ध है न कोई सुख दुःखधर्मवाला न श्रवण करनेवाला साधक, न मुक्तिकी इच्छावाला न मुक्त है, तात्पर्य जो है सो है यों श्रुतिका अर्थ है ॥ इति प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

अब अध्यारोप अपवाद न्याय करके निष्प्रपञ्चब्रह्म जगत्का प्रपंच करके फिर मुक्तिकूं सिद्ध करते हैं मुक्ति महावाक्यार्थके ज्ञानसे होती है जैसे किसीकूं रज्जुमें सर्पकी भ्रांति है उसका दुःख कम्पादि लौकिक वाक्यार्थ के ज्ञानसे नाश होता है यहांके स्त्री चन्दन मालादि और परलोकके अमृत, नन्दनवन, देवाङ्गनादिकी प्राप्तिसे उसका दुःखनाश नहीं होता है ऐसे इस जीवके तीन ताप पञ्च क्लेश यहांके और स्वर्गादिके पदार्थोंकी प्राप्तिसे नाश नहीं होते हैं और न कम होते हैं महावाक्यार्थके ज्ञानसे नाश होते हैं माहावाक्यार्थका ज्ञान जब होता है प्रथम

पदार्थका ज्ञान होजावे कै पदोंका नाम वाक्य होताहै महावाक्यमें तीनपद हैं तत् त्वम् असि इस लिये तत् पदका अर्थ अभी आगे लिखेंगे उससे प्रथम तत्पदार्थका लक्षण लिखतेहैं तत्पदार्थका अर्थात् ब्रह्मका लक्षण दो प्रकारका है तटस्थ १ स्वरूप २ सृष्टि स्थिति लयका जो कारण अर्थात् जिससे यो जगत् हुआ है जिसमें ठहर रहाहै प्रलय समय जिसमें लय होजाता है सो ब्रह्मका तटस्थ लक्षण है और सत् चित् आनन्दादि स्वरूपलक्षण है जैसे किसी पुरुषका लक्षण श्याम गौर रँग इतनी अवस्था ऐसे नेत्रादि हैं यो उसका स्वरूप लक्षण है और जिसके बाहर कुंवा ऐसी उसकी हवेली ऐसे वस्त्र पहिररहाहै यों उसका तटस्थ लक्षण है तत्पदका अर्थ दो प्रकारका है वाच्य १ लक्ष्य २ मायोपहित जो चैतन्य सो तत्पदका वाच्यार्थ है मायोपहितका अर्थ योंहै माया उपहित दो पदहैं यों दोनों मिलके व्याकरणकी रीतिसे मायोपहित यों एक शब्द बोला जाताहै मायोपहित अर्थात् माया करके युक्त जैसे बिम्ब घटगत जल करके युक्त अथवा जैसे स्फटिक लालरंगकी सन्निधीसे लालही प्रतीत होता है ऐसेही शुद्ध ब्रह्म मायाकी सन्निधीसे ईश्वर प्रतीत होतेहैं जैसे स्फटिक लाल-रंग करके उपहित लाल स्फटिक कहा जाताहै और बिम्ब घटगत जल करके उपहित प्रतिबिम्ब कहा जाताहै

ऐसेही मायोपहित शुद्ध चैतन्य जगत्कारण ईश्वर कहे जाते हैं उपहितका अर्थ यहां भलेप्रकार याद करलेना भलेप्रकार बुद्धिमें निश्चय करलेना आगे बहुत जगे काम पड़ेगा प्रसंग यों था मायोपहित चैतन्य तत्पदका वाच्यार्थ और मायासे युक्त चैतन्य तत्पदका लक्ष्यार्थ है जैसे प्रतिबिम्बसे बिम्ब नित्यमुक्त है और शुक्ति भ्रान्तिकालमें भी रजत नहीं हुई और जैसे स्फटिक लालरंगकी सन्निधिकालमें भी श्वेतही रहता है ऐसेही शुद्धब्रह्म मायोपहित और अविद्योपहित कालमें भी ॥

टी०—अविद्या उपहित य दोनों पद मिलकर व्याकरणकी रीतिसे एक अविद्योपहित बोला जाताहै अर्थ यों हुआ अविद्या करके उपहित,

मू०—चैतन्य असंग शुद्धही है माया किसकूं कहतेहैं सुनो जैसे शुक्तिमें रजतकी भ्रान्ति ऐसे चैतन्यमें कारण सूक्ष्म स्थूल प्रपंच जड़की जो भ्रान्ति इसी का नाम माया है यो सब ब्रह्म है[१]यो सब वासुदेव है[२]ऐसी ऐसी अर्थवाली बहुत श्रुतिस्मृति चैतन्यका भाव और जड़का अभाव कहती हैं चैतन्य पदार्थ क्या है सुनो सत्। चित्। आनन्द। शुद्ध। बुद्ध। एक स्वयंप्रकाश। अनन्त। नित्यमुक्त। शान्त। अखंड। अज। अमर। परिपूर्ण। निरंजन। निरवयव। असंग। अद्वय। अव्यक्त। अचिन्त्यसर्वगत। अचल। सनातन। नित्य। आत्मा। परमात्मा

परमेश्वर । ब्रह्म । प्रत्यगात्मा । ये चैतन्य पदार्थके विशेषण हैं और भी चितिज्ञान स्वरूपादि विशेषण हैं और जड़ अज्ञानसे आदि लकर जो स्थूल पर्यन्त हैं सो सब जड हैं अज्ञानकूं प्रकृति और गुणोंकी साम्यावस्था और मूल अज्ञान भी कहते हैं सो अज्ञान सत्व, रज, तम, इन तीन गुणोंवालाहै स्वरूप उसका अनिर्वाच्य है सत् असत् करके कुछ नहीं कहाजाताहै जो सत् कहें तो कुछ पदार्थ नहीं है और असत् कहें तो प्रतीत होताहै जैसे भ्रान्ति समय शुक्तिमें रससे अनिर्वाच्य है परंतु ज्ञानमे उस आज्ञानका अभाव होनेसे वो अज्ञान भावरूप है जैसे लौकिक व्यवहारमें प्रथम कछु भूलजावे फिर याद आजावे और जैसे बालक अवस्थामें तूलाज्ञानका भाव होता है ॥

टी०--तूलाज्ञान यों है जैसे किसी पदार्थकूं भूलजावे उसमें जो कारण और बालक अवस्थामें जो अज्ञान सो तूलाऽज्ञान उसका न्याय शास्त्र और प्राकृत विद्याके पढनेसे और लौकिक व्यवहारसे नाश हो जाताहै और मूलाऽज्ञानका तो केवल ब्रह्मविद्यासे नाश होताहै ॥

मू०--विद्या पढ़ करके और व्यवहारादिसे उस अज्ञानका अभाव होजाताहै ऐसे अज्ञानकालमें कहता है कि मैं ब्रह्म कूं नहीं जानताहूं ज्ञानकाल में कहता है कि मैं ब्रह्मकूं जानता हूं ऐसा ऐसा अनुभव व्यवहार होनेसे निःसन्देह प्रतीत होताहै कि एक अज्ञान पदार्थ अनिर्वाच्य

है भाव और अभाव उसके दोनों प्रतीत होते हैं अज्ञान १ माया अविद्या का भेद २ मायोपहित सवल ब्रह्म ३ जीव ४ जीव ईश्वरका भेद ५ शुद्धब्रह्म ६ ये सब अनादि हैं इनकू यों नहीं कहाजाता है ये कबसे हैं और कबसे इनका भेद हुआ है और शुद्ध ब्रह्म कबसे मायोपहित अविद्योपहित हुए जैसे यों नहीं कहाजाता है शरीर प्रथम हुआ या कर्म दृष्टान्त यों है बीज प्रथम हुआ या वृक्ष और जैसे स्वप्नमें जो उपवन, मंदिर, मृग, मित्र, शत्रु आदि दीखते हैं विचारो कि उपवन, मंदिरकी कौनसे सम्बत मुहूर्त में नीव रक्खी गई है और मित्रादि का कौन से सम्बत् मुहूर्त में जन्म हुआहै योहीं निश्चय करो जैसे दृष्टांत के पदार्थोंकी व्यवस्था है वैसेही दार्ष्टान्त के पदार्थोंमें शुद्धब्रह्म अनादि भी और अनित्यभी हैं और सब अनित्य हैं ज्ञानकाल में शुद्ध ब्रह्मके विना सब नष्ट होजातेहैं वो अज्ञान माया अविद्या भेदसे दो प्रकार का है शुद्ध सत्त्व प्रधान हुआ माया मलिनसत्व प्रधान हुआ अविद्या कहाजाताहै रजोगुण तमोगुण करके जो सत्त्वगुण नहीं तिरोभाव होता है सो शुद्ध सत्व और रज तमोगुण करके जो सत्त्वगुण तिरोभाव होजाता है सो मलिन सत्व कहाजाता है माया अविद्याका भेद ऐसे समझो जैसे एक पुरुष क्रियाके निमित्तसे पाठक याचक कहलाता है और जैसे एक स्त्री पिताकी अपेक्षा करके

कन्या पतिकी अपेक्षा करके पत्नीहै ऐसे वो अज्ञान ईश्वरकी अपेक्षा करके माया और जीवकी अपेक्षा करके अविद्या कहाजाता है ऐसा भेदनहीं समझना कि अज्ञानके दो टूक होगये,अथवा उस अज्ञानकी शक्ति दो प्रकारकीहै ज्ञानशक्ति १ क्रिया शक्ति २ रजोगुण तमोगुण से नहीं दबा जो सत्वगुण सो ज्ञानशक्ति १ क्रियाशक्ति दो प्रकारकी है, आवरणशक्ति १ विक्षेप शक्ति रजसत्वगुण से नहीं दबा जो रजो रजोगुण सो विक्षेपशक्ति वोही अज्ञान आवरण शक्ति प्रधान हुआ माया मायोपहित चैतन्य ईश्वर कहाजाता है योंही तत्पदका वाच्यार्थ है और वोही चैतन्य अविद्योपहित जीव प्राज्ञ कहाजाताहै, मायोपहित ईश्वर तो मायाके वश नहीं हुए इस लिये सर्वज्ञ ईश्वरादि नाम करके कहेगये और अविद्योपहित जीव अविद्या के वश होगया उस अविद्याकी विचित्रतासे नानाप्रकारका होगया इसलिये अल्पज्ञ कहागया जैसे कोई पुरुष शीशके मकान बैठा हुआ आपकूं और औरोंकू भी देखताहै मृत्तिकाके मंदिरमें बैठा हुआ आपही कू देखता है कभी बहुत अन्धेरेमें अपना आप भी नहीं देखता है माया में शुद्ध सत्व प्रधान होनेसे माया शीशेके मंदिर के सदृश है और अविद्या में मलिन सत्त्व प्रधान होने से अविद्या मृत्तिका के मंदिर के सदृश है माया में प्रतिबिम्ब जो चैतन्यका सो

ईश्वर अविद्यामें प्रतिबिम्ब जो उसी चैतन्यका सो जीव वहां बिम्ब का भेद सूर्य बिम्ब और घट गत जल प्रतिबिम्बवत् नहीं समझना ऐसे समझना जैसे आकाशका प्रतिबिम्ब जलमें प्रथम दृष्टांतमें भी कुछ दोष नहीं में परंतु परिछिन्न भेदसा प्रतीत होताहै सो कुछ दोष नहीं है दृष्टांत एक देशमें होताहै अकाशके दृष्टांतसे बिम्बका भेद और परिछिन्नता नहीं प्रतीत होतीहै इस पक्षमें जीव तो एकही है परंतु अन्तःकरणकी उपाधिसे बहुत प्रमाता कल्प रक्खे हैं अन्तःकरण विशिष्ट चैतन्यकूं प्रमाता कहतेहैं कोई ऐसा कहते हैं अनेक अज्ञान हैं बनवत् जो आज्ञानोंका समुदाय सो समष्टि और वृक्षवत् जो एक अज्ञान सो व्यष्टि वोही चैतन्य।अज्ञान। समष्टि। करके उपहित ईश्वर और वोही चैतन्य व्यष्टि अज्ञान करके उपहित जीव कोई ऐसा कहते हैं करणी भूत जो अज्ञान उससे उपहित चैतन्य ईश्वर और अन्तःकरण करके उपहित वेही चैतन्य जीव तात्पर्य्य कारण उपाधिवाले ईश्वर और कार्य्य उपाधिवाला जीव सबका सिद्धान्त यों है मायोपहित चैतन्य ईश्वर । अविद्योपहित चैतन्य जीव सो ईश्वर ज्ञानशक्ति करके उपहित जगत्के निमित्त कारण विक्षेपशक्ति करके उपहित उपादान कारण जैसे मकडीजालेके प्रति चैतन्य प्रधानता करके तो निमित्त कारण और शरीर प्रधानता करके उपादान कारणयो मकड़ीका दृष्टान्त श्रुतिने कहाहै कि जिस प्रकार मकड़ी

जाले कूं रचतीहै फिर अपनेमें लय करलेतीहै तात्पर्य परमेश्वर जगत्के कर्त्ता अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं अर्थात् नहीं हैं भिन्न निमित्त और उपादान कारण जिन्होंसे सो अभिन्न निमित्तोपादान कारण इस प्रकार जगत्के कारण ईश्वरहैं ऐसे नहींहैं जैसे घटके बनानेमें कुलाल भिन्न निमित्तोपादान कारण है अर्थात् भिन्नहै निमित्त और उपादान कारण जिससे सो भिन्न निमित्तोपादान कारण कुलाल तात्पर्य घटके बनानेमें मृत्तिका उपादान और कुलाल दण्ड चक्रादि निमित्तहैं ईश्वर तो आपही उपादान और आपही निमित्तहै पूर्वरीतिसे भले प्रकार विचारना योग्य है निरीश्वर वादी पूर्वमीमांसकादिकूं जो यो तर्क जगत्के मोहके लिये बाचाल करावें हैं उस तर्ककू सुनो वो लोग यों कहतेहैं ईश्वर जो त्रिभुवन कूं रचतेहैं सो त्रिभुवनके रचने में क्या क्या चेष्टा करतेहैं और रचनेके समय किस प्रकारकी कायाहैं जिनकी अर्थात् किस रूप हुए हुए और क्या है उपाय और आधार जिनका और क्या उपादान है यों तर्क उनकी अतर्क्य ईश्वर के विषय दुर्बल है परमेश्वर की रचना में तर्क का अवसर नहीं क्योंकि परमेश्वरकी माया नहीं घटनेके योग्य पदार्थ कू घटा सकतीहै और मनुष्यकी रचना इन्द्रजालादिमेंबुद्धि काम नहीं करती है परमेश्वर की रचनामें तो नष्टबुद्धि तर्क करते हैं तो भी उस तर्कके खण्डनके लिये कहाहैजो ऊपर अ

भिन्ननिमित्तोपादान कारण प्रकार वो वज्र उनके मुखमें मारना योग्य है ॥

इस रीति से जगत्का कर्त्ता ईश्वर कूं सिद्ध किया और कारण प्रपंचका यहांतक निरूपण किया जगत्में तीन प्रपंचहैं कारण १ सूक्ष्म २ स्थूल ३ अब सूक्ष्म प्रपंच का निरूपण करते है पूर्व सिद्धि किये हुए जो मायोपहित चैतन्य ईश्वर उनसे प्रथम महत्तत्त्व अहंकार की सूक्ष्म अवस्था फिर महत्तत्त्वसे अहंकार अर्थात् मैं एक हूँ बहुत होजाऊं फिर अहंकारसे आकाश आकाशसे वायु वायुसे तेज तेजसे जल जलसे पृथिवी अर्थ इन सबका ऐसा करना महत्तत्त्व करकेउपहित जो ईश्वर उनसे अहंकार हुआ तात्पर्य्य योंहै महत्तत्त्वादि सब जड़ पदार्थ हैं बिना चैतन्य रचना नहीं होसकती है निश्चय इसी आत्मासे आकाश हुआहै यों श्रुतिका अर्थहै माया कूं तीन गुणोंवाली होनेसे कार्य्य भी उसका आकाशादि पंच तीन गुणोंवाले हैं उन कूं अपंची कृत सूक्ष्म भूत और तन्मात्रा भी कहतेहैं इन्हीं सूक्ष्म भूतोंसे पंचीकृत स्थूल भूत उत्पन्न हुए हैं और सूक्ष्म शरीर १७ लिंगवाला उत्पन्न हुआ । १७ लिंग ये हैं ॥

टी०-सूक्ष्म शरीर कूं कोई १६ लिंग कोई १७ कोई १९ लिंगवाला कहतेहैं लिंगही कूं तत्त्व कहते हैं इंद्रिय दश प्राण पंच अन्तःकरण

मू०—शब्दादिका ज्ञान होताहै जिन इन्द्रियोंसेसोज्ञानेन्द्रिय पंच और कर्म किया जाताहै जिन इंद्रियों से सो कर्मेन्द्रिय पंचप्राणादि पंच मन बुद्धि २ आकाशादिके सत्वगुणके अंशसे पृथक् पृथक् पंच ज्ञानेन्द्रिय हुएसोई लिखतेहैं आकाशसे श्रोत्र वायुसे त्वक् तेजते चक्षु जलसे रसना पृथिवीसे घ्राण और आकाशादिके मिलेहुये सत्व-गुणके अंशसे अन्तःकरण सो वृत्ति भेदसे चार प्रकारका है संकल्प विकल्पवाला मन निश्चयवाली बुद्धि अभिमान वाला अहंकार अनुसंधानवाला चित्त और आकाशादिके रजोगुणके अंशसे पृथक् पृथक् पंच कर्मेन्द्रिय हुये हैं आ-काशसे वाक वायुसे पाणि तेजसे पाप जलसे उपस्थ पृथिवीसे वायु और आकाशादिके मिले हुये रजो-गुणके अंशसे प्राण सो वृत्ति भेदसे पांच प्रकारका है बाहरको निकलनेवाला नासिका मुखमें रहने वाला प्राण १ नीचेकूं जानेवाला वायु आदिमें रहनेवाला अपान २ सब शरीरमें फिरनेवाला सब

एक इस प्रकार १६ और इन्द्रिय प्राण १० मन बुद्धि २ इसप्रकार १७ और इन्द्रिय प्राण १० मन बुद्धि चित्त अहंकार ४ इसप्रकार १९ परन्तु बहुत १७ तत्त्ववाला कहते हैं)

शरीरम रहने वाला व्यान३खाये पियेकूं सब नाडियोंमें पहुंचानेवाला सारे शरीर में रहनेवाला समान४ऊपरकूं जानेवाला कण्ठमें रहनेवाला उदान ५ और पंच उप- प्राण हैं उनका भी इन्हीं पांचमें अंतर्भावहै, उद्गारमें जो हेतु सो नाग१नेत्रोंके खोलने मीचनेमें जो हेतु सो कूर्म२ भूकका जो हेतु सो कृकरः३जम्भाई लेनेमें जो हेतु सो देवदत्त४सर्व जगह रहनेवाला धनंजय जो मुरदेकूं फुला देता है आकाशसे दो इन्द्रिय श्रोत्र और वाक्हेतु यह है श्रोत्र करके जो आकाश का सद्गुण सो ग्रहण किया जाता है और वाक्से बोला जाताहै वायुसे दो इन्द्रिय त्वक् और पाणि हेतु योहै त्वक् करके तो वायुका जो स्पर्श गुण उसका ज्ञान होताहै और पाणिसे त्वक्की रक्षा होतीहै तेजसे दो इन्द्रिय चक्षु और पाद हेतु यो है चक्षु करके तो तेजका जो गुणरूप उसका ज्ञान होताहै और पैरके मलनेसे चक्षुकी गरमी दूर होतीहै जलसे दो इन्द्रिय रसना उपस्थ हेतु यो है रसना करके तो जलका जोगुण रस उसका ज्ञान होताहै और तरह रहता है और उपस्थ करके जलका त्याग होताहै पृथिवीसे दो इन्द्रिय घ्राण और वायुहेतु यो है घ्राण करके तो पृथिवीका जो गुण

गंध उसका ग्रहण होताहै और वायुसे गंधका त्याग होताहै, और अन्तःकरण समष्टि पांचों भूतोंके सत्वगुणके अंशसे उत्पन्न हुआहै हेतु योहै पांचों ज्ञानेन्द्रियोंके विषोंकूं अनुभव करताहै, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय, ये पंचकोश कारण सूक्ष्म स्थूल शरीरों के अन्तर्भावहैं आगे जो कहेंगेस्थूल शरीर सो तो अन्नमय कोश है सूक्ष्मशरीरमें तीन कोशहैं पंच कर्मेन्द्रिय करके सहित जो पंचप्राण सो प्राणमय कोश और पंच ज्ञानेन्द्रिय करके सहित जो मन सो मनोमय कोश और पंच ज्ञानेन्द्रिय करके सहित जो बुद्धि सो विज्ञानमय कोश है मनोमय विज्ञानमय कोशमें यह भेद मनोमय कोश तो करण और विज्ञानमय कोश कर्त्ता है क्रियामें कर्त्तादि ये षट्कारक होते हैं। कर्त्ताकर्म च करणं संप्रदानं तथैव च। अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट्॥ और कारण शरीरमें कारणरीरभूता अविद्यामें जो मलिन सत्व सो प्रिय मोद प्रमोद वृत्तिकरके सहित आनन्दमय कोशहै कोई अज्ञानकूं आनन्दमय कोश कहतेहैं जो वस्तु प्राप्त नहो और अच्छी प्रतीत हो उस समयकी वृत्तिकूं प्रिय कहतेहैं१ फिर वोही वस्तु जब अपनी होजावे उस समयमें जो आनन्द सो मोद२ उसके भोगनेमें जो आनन्द वो प्रमोद३जो सूक्ष्म शरीर

समष्टि व्यष्टि भेदसे दो प्रकारका है वनवत् सूक्ष्म शरीरोंका समुदाय समष्टि वृक्षवत् पृथक् पृथक् एक एक सूक्ष्म शरीर व्यष्टि जैसे उपवन समष्टिऔर उसी उपवनका एक एक वृक्ष व्यष्टि सूक्ष्म समष्टि करके उपहित वोही मायोपहित चैतन्य हिरण्यगर्भ कहाजाता और सूक्ष्म व्यष्टि करके उपहित वोही अविद्योपहित चैतन्य तैजस कहाजाता है समष्टिव्यष्टि कूं तादात्म्य होनेसे उन करके उपहित हिरण्यगर्भतैजसकी भी तादात्म्यहै जैसे वन और वृक्ष करके उपहित आकाशमें कुछ भेद नहीं ऐसे हिरण्यगर्भतैजसमें भेद नहीं और भी दृष्टांत हैं जाति व्यक्ति सामान्य विशेष नगर मोहल्ला इनका विना विचारके भेद है वास्तव भेद नहीं, जो सूक्ष्म शरीर अविद्या काम कर्म करके सहित पुर्यष्टक कहाता है सोई लिखते हैं, ज्ञानेन्द्रिय पंच १ कर्मेन्द्रिय पंच २ चार अन्तःकरण ३ पंचप्राण ४ पंचसूक्ष्म भूत ५ अविद्या ६ काम ७ कर्म ८ अविद्याका कार्य चार प्रकारका है ब्रह्मलोकपर्यन्त जो पदार्थ हैं उनमें नित्य बुद्धि होनी १ दुःखोंमें और दुःखोंके साधनोंमें जो सुखबुद्धि २ देहादि अनात्म पदार्थों में आत्मा बुद्धि ३ अपवित्र जो अपने और पुत्रादिके शरीर उनम पवित्र बुद्धि ४ काम रागकूं कहते हैं कर्म तीन प्रकारका है संचित १ आगामी २ प्रारब्ध ३ अपना किया हुआ

कर्म फलकूं नहीं देकर जो अदृष्टरूप करके ठहर रहाहै सो सञ्चित १ इस शरीर में जो किया जाता है सो आगामी २ स्थूल शरीरके जन्म स्थितिका जो हेतु सो प्रारब्ध३सञ्चित आगामी कर्मोंक फलका भोग करके वा उसकाविरोधकर्मकरकेवाब्रह्मज्ञानकरकेनाश होजाताहै॥

और प्रारब्ध कर्मका भोगनेसे नाश होताहै प्रारब्धसे पृथक् अविद्यादि पंच क्लेश हैं उनका ब्रह्मज्ञानसे नाश-होताहै अविद्या १ अस्मिता २ राग ३ द्वेष ४ अभिनि-वेश ५ कारण कार्यकरके अविद्या दो प्रकारकी ऊपर लिख आये हैं अहंकारकी सूक्ष्म अवस्थाकूं अस्मिता और महत्तत्त्व और सामान्य अहंकार भी कहते हैं राग कामको कहते हैं द्वेष क्रोधको कहते हैं अपने आप ग्रहण करके फिर उसके त्यागको न सहना इसकूं अभिनिवेश कहते हैं ब्रह्मकूं जान करके सारे क्लेशोंसे छूटजाता है या श्रुतिका अर्थ है यहांतक सूक्ष्मशरीरकी उत्पत्ति लिखी अब स्थूल शरीर की उत्पत्ति लिखते हैं, पंचीकृत पंचस्थूल भूत हैं आकाशादिके तामस अंशकूं लेकर अर्थात् बुद्धिमें कल्पना करके प्रथम एक एक के दो दो टूक करके दोमेंसे एककूं पृथक् रक्खे उस दूसरेके चार चार भाग करे फिर उन चारों भागोंको अपने अपने भागको छोड़कर औरोंमें मिला देना यो पंचीकरण कह-

लाताहै जिसका भाग जिसमें सिवाय है वोही कहनेमें आता है जैसे मनुष्यशरीरकूं पार्थिव कहते हैं, पंचीकृत स्थूल भूतोंका जो रचा हुआ स्थूल शरीर उसमें पंचीकृत स्थूल भूतहैं और अपंचीकृत भूतोंके तामस अंशका कार्य इस प्रकार है, पंचीकृत जो पथिवी उसकी पृथिवीका कार्य अस्थि क्योंकि कठिन है जलका कार्य मांस कुतः बह जाताहै और शिथिलहै तेजका कार्य नाड़ी कुतः ज्वरकी परीक्षा करतीहै वायुका कार्य त्वक् कुतः स्पर्श करती है आकाशकाकार्य रोम कुतः काटनेसे दुःख नहीं होताहै पंचीकृत जो जल उसकी पृथिवीकाकार्य शोणित कुतः पृथिवीके सदृश रक्तहै जलका कार्य्य शुक्र कुतः श्वेत है और उससे गर्भ होताहै जस जलसे सब वस्तुकी उत्पत्ति है तेजका कार्य मूत्र कुतः उष्णहै वायुका कार्य स्वेद कुतः बहुत दम चलनेसे आजाताहै और वायुसे सूख जाताहै आकाशका कार्य राल कुतः ऊपरकूं जातीहै और आकाशभी ऊंचाहै और पंचीकृत जो तेज उसकी पृथिवीका कार्य आलस्य कुतः आलस्यमें जड़ताहै जलका कार्य कान्ति कुतः जलके स्पर्श स्नानादिसे सुन्दरता होतीहै तेजका कार्य क्षुधा कुतः अन्नकूं पचातीहै वायुका कार्य तृषा कुतःओष्ट कंठ सूखजाताहै आकाशका कार्य निद्रा कुतः निद्रामें निर्विकल्प होजाताहै और पंचीकृत जो वायु

उसकी पृथिवीका कार्य संकोचन कुतः जिससमयमनुष्य सुकड़ कर बैठे तो भारी और जड़सा होजाताहै जलका कार्य चलना कुतः जल भी चलताहै तेजका कार्य उठना उछलना कुतः उठने उछलनेमें ऊंचा होताहै और अग्नि भी ऊपरकूं जाताहै वायुका कार्य दौडना कुतः दौडनेमें बल होताहै और वायुमें भी बल और वेगहै आकाशका कार्य पसरना कुतः आकाश भी व्यापकहै और पसारनेमें भी व्यापक होताहै अर्थात् फैलता है और पंचीकृत जो आकाश उसकी पृथिवीका कार्य कटी जहां मल रहता है कुतः गंध स्थान है जलका कार्य उदर कुतः जलका स्थानहै तेजका कार्य हृदय कुतः उष्ण रहताहै वायुका कार्य कंठ कुतः वायुका स्थानहै आकाशका कार्य शिर कुतः शब्दस्थानहै और अनहद शब्द होता रहता है और पंचीकृत आकाशका भेद दूसरे प्रकार ऐसेहैं उसकी पृथिवीका कार्य भय कुतः भयसे अन्तःकरणमें तम प्रधान होजाताहै और तम पृथिवीका भागहै जल का कार्य मोह कुतः जलके स्पर्शसे उत्पन्न होता है जो सुन्दरता उसकूं देखकर मोह होता है तेजका कार्य क्रोध कुतः क्रोधके समय हृदय भस्म होताहै वायुका कार्य काम कुतः वायुभी चंचल है और काम भी चंचल है आकाशका कार्य लोभ कुतः आकाशकीभी अवधि नहीं लोभकी भी अवधि नहीं ॥

	पृथिवी	जल	तेज	वायु	आकाश
पृथिवी	अस्थि	मांस	नाड़ी	त्वचा	रोम
जल	रक्त	वीर्य	मूत्र	स्वेद	राल
तेज	आलस्य	कान्ति	भूक	प्यास	निद्रा
वायु	संकोचन	चलना	उठना उछलना	दौड़ना	फइलना
आकाश	कमरमें	पेटमें	ह्रदयमें	कंठमें	शिरमें
दूसरी प्रकार आकाश	भय	मोह	क्रोध	काम	लोभ

शब्द गुण जिसमें रहताहै सो आकाश सावकाशरूप रूपरहित स्पर्शवाला वायु गर्मस्पर्शवाला तेज सो चार प्रकारकाहै अग्नि आदि स्वर्गादि विद्युदाऽऽदि जठराग्नि शीत स्पर्शवाला जल गंधवाली पृथिवी पंच भूतोंके जो लक्षण कहेहैं सो तीनों दोषोंसे रहित हैं जिस लक्षणमें अव्याप्ति अतिव्याप्ति असम्भव ये तीन दोष पाये जावें वो प्रमाण नहीं जैसे किसीने कहा गौ कपिला होतीहै इसमें अव्याप्ति दोषहै कुतः बहुत गौ कपिला नहीं होतीं फिर कहा सींगवाली गो होतीहै इसमें अतिव्याप्ति दोषहै क्यों कि सींग हिरन आदिके भी होते हैं फिर किसीने कहा एक खुरवाली गो होतीहै इसमें असम्भव दोषहै कुतः यह लक्षण

गौमें सम्भव नहीं होसक्ता वो लक्षण प्रमाण है जो सब दोषसे रहित होय जैसे गौका लक्षण सींग सास्ना आदि वाली गौ विचारो इसमें कोई दोष नहीं आकाशमें एक गुण शब्द वायुमें दो शब्द स्पर्श तेजमें तीन शब्द स्पर्श रूप जलमें चार शब्द स्पर्श रूप रस पृथिवीमें पांच शब्द स्पर्श रूप रस गंध पंचीकृत पृथिवी आदिसे ब्रह्माण्ड हुआ ब्रह्माण्डमें चौदह लोक भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्य। ये सात ऊपर ऊपरके लोकहैं और तल। वितल। सुतल। तलातल। महातल। रसातल। पाताल। ये सात ७नीचे नीचेके लोकहैं ब्रह्माण्डसे मनु और शतरूपा हुये ब्रह्माण्डमें जो पृथिषी उससे औषधि हुई औषधिसे अन्न माता पिताके खायेहुयेका परिणाम जो शोणित उससे स्थूल शरीर उत्पन्न हुआ शरीर चार प्रकारके हैं मनुष्यादिके शरीर जरायुज अर्थात् जरायुसे उत्पन्न हुये पक्षी नागादिके शरीर अण्डज अर्थात् अण्डेसे उत्पन्नहुये लीख जूं आदिके शरीर स्वेदज अर्थात् पसीनेसे उत्पन्न हुये तृण वृक्षादि उद्भिज्ज पृथिवीकूं भेदनकरके उत्पन्न हुये और मनुसेलेके सनन्दनादि शरीर इन चारोंसे पृथक्हैं वे मानवी सृष्टिमें हैं सुना जाताहै ये ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न हुये हैं यह स्थूल शरीर समष्टि व्यष्टि भेद करके दो प्रकारका है पंचीकृत पंच महाभूत और उनका

कार्य्य ब्रह्माण्डके भीतर जो पंच भूतोंका कार्य स्थूल शरीरादिका समुदाय यह सब समष्टि और पृथक् पृथक् स्थूल शरीर व्यष्टि इस स्थूल समष्टि करके उपहित वही मायोपहित चैतन्य विराट् कहाजाता है और स्थूल व्यष्टि करके उपहित वही अविद्योपहित चैतन्य विश्व कहाजाताहै समष्टि व्यष्टि कूं जाति व्यक्ति सामान्य विशेष वनवृक्षवत् तादात्म्य होनेसे उन करके उपहित विराट् विश्वकीभी एकताहै इस जीवकी प्रसिद्ध तीन अवस्था हैं प्रसिद्ध लिखनेसे यह अभिप्राय है कोई मरण और मूर्च्छा ये दो अवस्था और भी कहते हैं परंतु प्रसिद्ध तीन अस्था हैं जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति जाग्रत्का अर्थ जाननेके लिये प्रथम इंद्रिय और अन्तःकरण और शब्दादि विषय और बोलनादि क्रिया और संकल्पादि अन्तःकरणके धर्म और दिक् आदि देवताओंके सहित सबकूं पृथक् पृथक् लिखते हैं यह संकेत याद रखना चाहिये एकका अंक जिसके आगे उसकूं इंद्रिय वा अन्तःकरण जानना इसीकूं अध्यात्म कहते हैं और दोका अंक जिसके आगे उसकूं ज्ञानेन्द्रियका विषय वा कर्मेन्द्रियकी क्रिया वा अंतःकरणका धर्म जानना इसीकूं अधिभूत कहते हैं और तीनका अंक जिसके आगे उसकूं देवता जानना इसीकूं अधिदेव कहते हैं जिस इन्द्रिय और मनादिक आगे विषय क्रिया धर्मदेवता

लिखेहैं उसी उस इंद्रियमनादिके विषय क्रिया धर्म देवता हैं शब्दादि पांचकूं विषय और बोलनादि पांचकूं क्रिया और संकल्पादि चारकूं धर्म बोलते हैं श्रोत्राऽऽदि इंद्रिय सूक्ष्महैं कान नासिकादि जो स्थूल शरीरमें दीखते हैं ये उनका आश्रयहैं अर्थात् उनमें रहतेहैं बहुत करके तो बहिर्मुख हैं कभी भीतरका भी कुछ ज्ञान होजाताहै श्रोत्र कानमें रहता है बहुत करके तो बाहरके शब्द कूं सुनता है कभी कान बन्द करनेसे कुछ शब्द भीतरकाभी सुनाजाताहै श्रोत्र करके सुना जाता हैजो शब्द सो दो प्रकारका है एक शास्त्रादिका दूसरा भेरी आदिका सो पांचोंभूतोंमें रहता है २ दिक् ३ त्वक् सारे शरीरमें रहता है बहुत करके तो बाहरके शीत कोमलादि कूं विषय करताहै कभी उष्णादि वस्तुके खानेसे भीतरके स्पर्शका ज्ञान होताहै १ त्वक् करके जो स्पर्श किया जाता है सो स्पर्श पांच प्रकारका है शीत गर्म न शीत न गर्म कठिन कोमल शीत स्पर्श जलमें गर्म स्पर्श तेजमें न शीत न गर्म पृथिवी वायुमें कठिन कोमल पृथिवीमें और पृथिवीके कार्य वस्त्रादिमें रहते हैं २ वायु ३ चक्षु नेत्रोंमें कृष्ण तारेके अग्रभागमें रहता है बहुत करके तो बाहरके रक्त पीतादि रूपकूं देखता है कभी नेत्रके मीचनेमें भीतर का भी तम प्रतीत होता है १ चक्षु करके जो रूप

देखनेमें आताहै सो सात प्रकारकाहै शुक्ल नील पीत रक्त हरित कपिश चित्र भेद करके सो पृथिवीमें तो सात प्रकारका और जलमें अभास्वर शुक्ल और तेजमें भास्वर शुक्ल रहताहै२सूर्य३रसना जीभके अग्र भागमें रहता है बहुत करके तो बाहरके मधुरादि रस अनुभव करता है कभी डकार आनेसे भीतरके रसका भी ज्ञान हो जाता है१रसना करके जो रसका अनुभव होताहै सो६प्रकारका है मधुर अम्ल लवण कटु कषाय पित्त भेद करके सो पृथिवीमें तो६प्रकारका और जलमें केवल मधुर रहताहै२वरुण३घ्राण नाकके दोस्वर उनके अग्रभागमें दोक बीचम रहताहै बहुत करके तो बाहरके गन्धकूं ग्रहणकरता है कभी डकार आनेसे भीतरके गन्धकाभी ज्ञान होजाताहै १ घ्राणकरके जो गन्धका ग्रहण किया जाता है सो दो प्रकारका है सुगन्ध दुर्गंध सो पृथिवीमें रहता है२पृथिवी ३ यहांतक ज्ञानेन्द्रियोंका निरूपण किया वाक् जीभमें रहता है १ बोलना २ अग्नि३ पाणि हाथोंमे रहता है १ लेना देना २ इन्द्र ३ पाद चरणोंम रहता है १ चलना फिरना २ विष्णु ३ उपस्थ मूत्र करनेका जो शरीरमें चिह्न उसमें रहता है१मैथुन मूत्रत्याग२प्रजापति ३ वायु मल त्याग करनेका जो शरीरमें चिह्न उसमें रहताहै १ मलका त्याग करना २

मृत्यु३यहांतक कर्मेन्द्रियोंका निरूपण किया अन्तःकरण हृदय गोलकमें रहताहै सो वृत्तिभेद करके चारप्रकारकाहै मन बुद्धि चित्त अहंकार मन१ संकल्प विकल्प मनोराज्यादि २ चन्द्र ३ बुद्धि १ पदार्थोंका निश्चय करना२बृहस्पति३चित्त १ चिन्तवन करना २ क्षेत्रज्ञ ३ अहंकार१यह मैंने किया यह मेरे करने योग्यहै २ रुद्र ३अमान अदम्भ अहिंसा क्षमा आर्जव वैराग्य शम दम मुक्तिकी इच्छा संतोष औदार्यादि ऐसी ऐसी और भी अन्तःकरणकी सत्वगुणी वृत्ति हैं और तृष्णा दम्भ लोभ अहंकार अशम भोगोंकी इच्छा चपलता अभिमान रागादि ऐसी ऐसी औरभी बहुत अन्तःकरणकी रजोगुणीवृत्ती हैं और निद्रा आलस्य प्रमाद मोहादि अन्तःकरणकी तमोगुणी हैं अर्थात् यह सब अन्तःकरणका धर्म है जो संकल्प विकल्पवालीवृत्ति सो मनकी और निश्चयवाली बुद्धिकी और अनुसन्धानवाली चित्तकी और अभिमानवाली अहंकारकीवृति, सत्वगुणीवृत्तिसे पुण्यकी उत्पत्ति होतीहै रजोगुणी वृत्तिसे पापकी उत्पत्ति होती है तमोगुणी वृत्तिसे मूर्खता बढ़तीहै वृथा अवस्था व्यतीत होतीहै उससे न कुछ इस लोकमें प्राप्ति न कुछ परलोकमें प्राप्ति है पीछेतमोगुणी वृत्ति बहुत दुःखकी हेतु है॥

भूत	ज्ञानेंद्रिय	विषय	ज्ञानेंद्रियों के देवता	कर्मेंद्रिय	क्रिया	कर्मेंद्रियों के देवता
आकाश	श्रोत्र	शब्द	दिक्	वाक्	बोलना	अग्नि
वायु	त्वक्	स्पर्श	वायु	पाणि	लेना देना	इन्द्र
तेज	चक्षु	रूप	सूर्य्य	पद	चलना	विष्णु
जल	रसना	रस	वरुण	उपस्थ	[illegible]	प्रजापति
पृथ्वी	घ्राण	गंध	पृथ्वी	गुदा	मल त्याग	मृत्यु

श्रोत्रादि इन्द्रियोंक जो देवतादिक आदि ।

उन करके युक्त श्रोत्रादि करके जो अपने अपने विषयों का अनुभव होना सो जाग्रत अवस्था यह जो जाग्रत अवस्था और यह स्थूल शरीर मन इन्द्रियादिका आश्रय इन दोनोंका जो अभिमानी जीव सो विश्व कहा जाताहै प्रथम भी विश्व विराट्की एकता लिख आयेहैं इसलिये भेदकी निवृत्तिके लिये विश्वकूं विराट्रूप करके देखे १ जाग्रत अवस्थामें जो भोग देनेवाले कर्म उनका उपराम हुये सन्ते और बाहर श्रोत्रादि इन्द्रियोंका उपराम हुये सन्ते जाग्रत अवस्थामें जो देखा और सुना उनहीं संस्कार करके केवल अन्तःकरण करके जो निद्रामें प्रपंचकी प्रतीत सोई स्वप्न अवस्था वोही जाग्रत अवस्थाका अभिमानी जो विश्व सोई स्वप्न अवस्था और सूक्ष्म शरीरका अभिमानी

हुआ तैजस कहाजाताहै तैजस हिरण्यगर्भकी एकता है तैजसकूं हिरण्यगर्भरूप करके देखे २ जाग्रत स्वप्नमें जो भोग देनेवाले कर्म उनका उपराम हुये सन्ते स्थूल सूक्ष्म शरीरोंका जो अभिमान उसके निवृत्ति होनेसे बुद्धिका कारणात्मामें जो स्थित होना सो सुषुप्ति अवस्था मैंने न कुछ जाना सुख करके मैंने निद्राका अनुभव किया जो जाग्रत अवस्थामें जिस अवस्थाकी व्यवस्था कहती है वोही सुषुप्तिहै तात्पर्य जिस अवस्थामें बुद्ध्यादि सब लय होजाते हैं वोही सुषुप्तिहै वोही स्वप्न अवस्थाका अभिमानी जो तैजस जो यह सोईसुषुप्ति अवस्था और कारण शरीरका अभिमानी हुआ प्राज्ञ कहा जाताहै प्राज्ञ ईश्वरकी एकताहै प्राज्ञकूं ईश्वररूप करकेदेखे यहही प्राज्ञ तीनों शरीर और तीनों अवस्थाका अभिमान छोड़कर शुद्धपरमात्माहोजाताहै जो यह उपासनाकरे मैं विराट् वा हिरण्यगर्भ वा ईश्वर वा शुद्धब्रह्महूं इस उपासना करके वैसाही वैसा फल होताहै अर्थात् विराटादिकी उपासना करनेसे विराट् आदि हो जाताहै ऐसीऐसी उपासना उपनिषद आदिमें भलेप्रकार फलके सहित लिखीहैं और भी प्रणवआदिउपासनाहैंशुद्ध ब्रह्मसे लेकर पाषाण आदि मूर्ति पर्य्यंत उपासना हैं जैसी अपनी सामर्थ्य जाने भेदउपासना वा अभेद उपासनावेद शास्त्रोंमेंसे निश्चय करके करे परमेश्वरकी जैसी उपासना करेगा वैसाही वैसा फल होवेगा मुख्य अभेद उपासना

शुद्धब्रह्मकीहै और ईश्वर हिरण्यगर्भ विराट्की अभेद उपासना और विष्णु शिवादि राम कृष्णादिकी भेद उपासना और नामोच्चारणादि पाषाणादिमूर्त्तियोंकी अर्चनादि ये सब उपासना उत्तरोत्तर गौण हैं जो अभेदउपासना शुद्ध ब्रह्मकी न होसके तो भेदउपासना श्रीकृष्णचन्द्र महाराजादिकी करनेसे ज्ञानद्वारा मुक्तिमें सन्देह नहीं है जैसे कोई सिंह किसी पुरूषकी छायाकूं देखकर दौड़ा उस छायासे पुरुषकी प्राप्ति होगई इसीप्रकार मणिप्रभासे आदि लेकर और भी बहुत दृष्टान्त हैं, अष्टावक्रजीका यह वाक्य है कि जिसकी जो मतिहै उसकी वैसेही गति होगी अर्थात् 'दासोऽहम्' जिसकी मतिहै वो दासही है और 'ब्रह्माहमस्मि' यह जिसकी मतिहै वो ब्रह्महो है "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" इस श्रुति से इसप्रकार मायोपहित ब्रह्मका तटस्थ लक्षण निरूपण किया इसीकूं अध्यारोप कहते हैं अब इसका अपवाद लिखते हैं अधिष्ठानमें भ्रान्ती करके।

टी०—जिसमें जो वस्तु कल्पित हो जैसे रज्जुमें सर्प॥

मू०—जो प्रतीत होना उस भ्रान्त कूं अधिष्ठान से व्यतिरेक करके भ्रान्तका अभाव निश्चय करना जैसे शुक्ति में रजत की भ्रान्ति प्रतीत होती है शुक्तिका रजतसे व्यतिरेक करके यो रजत नहीं है शुक्ति है यो जो रजतका अभाव निश्चय करना इसीकूं अपवाद बाध विलापन भी कहते हैं सो बाध तीन प्रकारका है,

शास्त्र करके युक्ति करके प्रत्यक्ष करके वेद कहते हैं यो स्थूल सूक्ष्म प्रपंच नहीं है इस जगत् भ्रान्ति रूप में ब्रह्मसे पृथक् कुछ नहीं है एक शुद्ध ब्रह्म है इस प्रकार शास्त्र करके प्रपंचसे ब्रह्मका व्यतिरेक करके प्रपंचका अभाव निश्चय करना यो शास्त्र करके जगत्का बाधहै१ और घटसे मृत्तिकाका व्यतिरेककरके घटका अभाव निश्चय करना इसी प्रकार ब्रह्मसे व्यतिरेक करके सारे प्रपञ्चका अभाव निश्चय करना और जो देखनेमें आताहै इसकूं भ्रान्ति निश्चय करके ब्रह्ममात्र निश्चय करना यो युक्ति करके जगत्का बाध है यो जगत् सब ब्रह्महै इसकूं इसप्रकार जानना चाहिये ब्रह्माण्डमें जितने पदार्थ हैं सबमें पांच वस्तु हैं भान होता है प्यारा है नाम रूप संस्कृतमें अस्ति भ्रान्ति प्रिय नाम रूपसे ससा बोलते हैं प्रथमके तीन अंश सच्चिदानन्द ब्रह्मके हैं पदार्थ घटादिके नाश हुयेभीनहीं नाश होतेहैं औरनामरूप ये दोमायाके हैं मायाकूं मिथ्या होनेसे यो कार्यभी उसका नामरूप दोनों अंश नाश होजाते हैं अन्वय व्यतिरेक करके ब्रह्ममात्र निश्चय किया जाता है सोई लिखते हैं जैसे एकघट पदार्थ है है भान होता है प्यारा है ये तीन अंश उसमें ब्रह्मकेहैं और नाम घट और रूपकाला लाल गोलाकारादि ये दो मायाके अंश हैं है भान होताहै प्याराहै यो ब्रह्मका घटमें अन्वय है फिर घट फूट गया मायाके दोनों अंश- नामरूप जाते रहे घटमें माया के दोनों अंशोंका व्य-

तिरेक है और ब्रह्मका फिर भी अन्वय है कैसे टूक हैं भान होतेहैं, प्यारे हैं है भान होतेहैं, प्यारे हैं यो ब्रह्मके तीनों अंश वैसेहीहैं फिर उन टूकोंका काल पाकर चूर्ण होगया मायाके जो अंश नाम रूप थे वे दोनों नाश होगये मायाके दोनों अंशोंका चूरणमें व्यतिरेक है और ब्रह्म-का अन्वय है चूरण है भान होता है प्यारा है फिर वो चूरण भी काल पाकर नाश होगया नामरूप मायाके दोनों अंश नाश होगये चूरणमें मायाके अंशोंका व्यतिरे-कहै और ब्रह्मका अन्वयहै कैसे चूरणका अभावहै भान होताहै प्याराहै ये तीनों अंश जैसे प्रथम घटमें थे वैसेही घटके अभावमेहैं इसी प्रकार सब पदार्थोंमें अन्वय व्यति-रेक करके ब्रह्म निश्चय करना तीनों अवस्थामें भी अन्वय व्यतिरेक जाना चाहिये जाग्रत अवस्थामें स्वप्न सुषुप्ति का व्यतिरेक है आत्माका अन्वय है स्वप्न अवस्थामें जाग्रत सुषुप्तिका व्यतिरेक है आत्माका अन्वय है सुषु-प्ति अवस्थामें जाग्रत स्वप्नका व्यतिरेकहै आत्माका अ-न्वय है तुर्या अवस्थामें जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिका व्यति-रेक है आत्माका अन्वयहै इसीप्रकार बुद्धिमान सब ज-गह विचार कर प्रसंग यों था युक्ति करके भी जगत् का बाधहै उसका यो क्रमहै समस्त स्थूल प्रपञ्च कूं स्थूल महाभूतोंमें मिलादे यो निश्चय करे पञ्चभूतोंसे पृथक् कुछ नहीं फिर स्थूलभूतों कूं और सूक्ष्म पंच भूतोंके कार्य

इन्द्रिय मनादिकूं पंच सूक्ष्म भूतोंमें मिलादे फिर पृथिवी कूं जलमें जलकूं तेजमें तेजकूंवायुमें वायुकूं आकाशमें आकाशकूं अहंकारमें अहंकार कूं महत्तत्त्वमें महत्तत्त्व कूं अज्ञानमें अज्ञान मिथ्या है जैसे शुक्तिमें रजत फिर अज्ञानकूं शुद्धचैतन्यमें मिलादे फिर सदा अभ्यास केवल करके योही चिंतवन करता रहै मैं शुद्धब्रह्म सच्चिदानन्द परिपूर्ण नित्यमुक्त हूं जो कभी व्यवहारदशामें प्रपंच प्रतीत हो तो वैसेही अन्वय व्यतिरेक करके चैतन्यसे पृथक् कुछ न जाने जैसे किसी मृगकूं रेतीमें यों भ्रान्ति हुई यो जलहै वहां गया नेत्र सींग पैरसे भले प्रकार निश्चय किया कि यो जल नहीं है फिर मृग उसीजगह आनकर जो देखताहै तो वहां फिरभी भ्रान्तिसे जल प्रतीत होताहै परन्तु फिर यो जानताहै कि यो जल नहींहै भ्रान्ति है जो पशुकी यो बुद्धि है कि उस मृगतृष्णामें फिर नहीं प्रवृत्तहोताहै बुद्धिमान कि जिसने श्रुतिस्मृति युक्ति अनुभव करके ब्रह्मका निश्चय किया है वो कैसे संसार कूं सत्य जानेगा संसारका मिथ्याभ्यास भी उस कूं तबतक है कि जबतक प्रारब्ध कर्मका रचा हुआ जो शरीर नाश नहीं होता है पीछे उसके मुक्तरूप है युक्ति करके संसारका बाध योहीहै किसंसारकूं मिथ्या समझ लेना २ और मैं ब्रह्म हूं यो महावाक्य श्रवण करके जो हुआ अपरोक्ष ज्ञान और ब्रह्मकूं साक्षात् करके अज्ञान

की जो निवृत्ति सो प्रत्यक्ष बाध है ऐसे ३ तीन प्रकार करके संसार का बाध करना इसकूं अपवाद कहते हैं अध्यारोप अपवाद करके तत् त्वम् पदार्थों का साधन भी हुआहै सोई दिखाते हैं मायासे लगाकर स्थूल समष्टि प्रपंच जड़ १ और उस करके उपहित चैतन्य२ और दोनों का आधार अनुपहित चैतन्य ३ ये तीनों पृथक् हैं और इन तीनों का तप्तलोहेके पिण्डवत् एक प्रतीत होना यो तत् पदका वाच्यार्थ है और पृथक् जो अखण्ड चैतन्य सो तत् पदका लक्ष्यार्थ है और अविद्यासे लगाकर स्थूल व्यष्टि प्रपंच जड़ १ और उस करके उपहित चैतन्य २ और इन दोनोंका आधार अनुपहित अखण्ड चैतन्य ३ ये तीनों पृथक् हैं और इन तीनोंका तप्तलोहेके पिण्डवत् एक प्रतीत होना यो त्वम् पदका वाच्यार्थ है और पृथक् अखंड चैतन्य त्वम् पदका लक्ष्यार्थ है इन दोनों तत् त्वम् पदका लक्ष्यार्थ कूं ग्रहणकरके और वाच्यार्थ कूं मिथ्या जान कर वाच्यार्थका त्याग करके तीन सम्बन्धके सहित जहदजहद लक्षण करके सो यो देवदत्त है इस लौकिक वाक्यवत् 'तत्त्वमसि' यो महावाक्य अखंडार्थ का बोधकहै तीन सम्बन्धों का अर्थ विना कुछ शास्त्र के पढ़ेहुए भलेप्रकार नहीं जाना जाता है न भले प्रकार भाषामें लिखाजाताहै इसलियेकुछ तात्पर्य लिखे देतेहैं।सामानाधिकरण्य १ विशेषण विशेष्यभाव २ लक्ष्यलक्षणभाव ३ समानहैं

अधिकरण जिसका सो सामानाधिकरण्य जो जिसमें रहे उसकूं अधिकरणकहते हैं । किसी ने कहा सो यो देवदत्त है सो अर्थात् काशीमें तुमने हमने १६ वर्षकी अवस्था गृहस्थाश्रम में जोदेखाथा सोई यो अर्थात् अब हरिद्वारमें ३० वर्षकी अवस्थामें जो दीखताहै सो यो देवदत्तहै पूर्व काशी १६ वर्षकी अवस्थादिका और हरिद्वार ३० वर्षकी अवस्थादि का त्याग करके केवल देवदतके पिण्ड मात्रमें दृष्टि करके यो अर्थ बैठता है कि सो यो देवदत्तहै । कहे हुए अर्थकूं कुछ त्यागदेना कुछ रखलेना इसकूं जहदजहद लक्षण कहतेहैं सो यो देवदत्त है इस वाक्यका अर्थ जहदजहद लक्षणा करके होसकताहै जैसे इस वाक्यमें 'जहदजहद लक्षणा'है ऐसे और वाक्यों में भी किसीमें 'जहद्' लक्षणा किसीमें 'अजहद्'लक्षणाहै तात्पर्य्य जिस वाक्य का अर्थ बुद्धिमें न बैठता हो कुछ विरुद्ध प्रतीत होता हो तो उस वाक्य का अर्थ लक्षणा शक्ति व्यंजनादि करके निश्चय करते हैं उन वाक्योंकेबहुतउदाहरणलिखनेमें विस्तार होताहै इसलिये थोड़ेसे उदाहरण लिखते हैं और उनके लिखनेका यहां कुछ प्रयोजन भी नहीं है जहद् लक्षणा वह है कि कहे हुये वाक्यार्थ कात्याग करके और बनाकर लक्षणा करनी जैसे किसी ने कहा गंगा में गांवहै वहां से दूध ले आओ उसने विचारा गंगाजी में गांवका होना नहीं बनता इस हेतुसे गंगाजीके तीरके गांवसे दूधले आया तात्पर्य क

हने वालेका तीरमें था जहत् लक्षणासे यो अर्थ बनसक्ता है, अजहत् लक्षणा वह है कि कहे हुए वाक्यार्थकूं ग्रहण करके और भी कुछ अर्थ बनाकर लक्षणा करनी जैसे किसीने कहा कि दूधकी कौवनसे रक्षा करते रहना उसने अजहत् लक्षण करके कौवनसे भी रक्षाकरी औरोंसे भी रक्षाकरी क्योंकि तात्पर्य दूधकी रक्षामें था, जैसे पंकजका अर्थ यों है कि जो कीचसे उत्पन्नहो सो पंकज विचारो कीचसे बहुत वस्तु कसेरू आदि उत्पन्न होते हैं परंतु पंकजकी शक्ति कमलमें ही है, वाक्यार्थके तात्पर्यकूं समझना यो व्यंजना है जैसे किसी स्त्रीका पुरुष विदेशकूं जाता था स्त्रीने चलते समय प्रार्थना करी कि जहां आपका जानाहो उसी जगह मेराभी जन्महोवे अर्थात् आपके जाते ही मेरे प्राण छूट जावेंगे, प्रसंगसामानाधिकरण्य कथासों सुनो सो और योपद इन दोनोंका जैसे देवदत्तका पिण्ड अधिकरण है ऐसे तत् त्वम् इन पदोंका शुद्ध चैतन्य अधिकरण है। तत् त्वम् पदोंका सामानाधिकरण्य संबन्ध है जैसे सो योऐसा कहो वा यो सो ऐसा कहो ऐसे तत् त्वम् ऐसा कहो वा त्वम् तत् ऐसा कहो यो तत् त्वम् पदार्थोंका विशेषण विशेष्य भाव सम्बन्ध है, जैसे सो यो इन शब्दोंका और इनके अर्थोंका लक्ष्यलक्षणभाव सम्बन्ध है सो यो ये दोनों पद तो लक्षण हैं और इन लक्षणोंसे जो लखाजावे सो लक्ष्य देवदत्तका पिण्ड है ऐसे तत् त्वम् पदोंके और

उनके अर्थोंका लक्ष्यलक्षणभाव सम्बन्ध है। तत् त्वम् ये पद तो लक्षण हैं और इन लक्षणों से जो लखा जावे सो लक्ष्य एक शुद्ध चैतन्यहै इस प्रकार तीन सम्बन्ध करके अखण्डार्थका बोध होता है जीवकी जो उपाधि अविद्या अल्पज्ञतादि और ईश्वरकी उपाधि माया सर्वज्ञतादि इन दोनों उपाधियोंका जहद्जहद लक्षणासे त्याग करके तात्पर्य तत् त्वम् पदोंके वाच्यार्थका त्याग करके लक्ष्यार्थका ग्रहण करके केवल एक शुद्ध चैतन्यमें लक्षणा करनी तब 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य का अर्थ अखण्डार्थ निश्चय होताहै अखंडार्थ जिसकूं कहते हैं सुनो स्वगत १ जैसे वृक्षमें पत्र पुष्पादिका भेद और सजातीय २ जैसे अनार आम्रादिका भेद और विजातीय ३ जैसे वृक्ष और पाषाणादिका भेद इन तीन भेद करके जो रहित सो अखण्ड अथवा देश काल वस्तु करके परिछिन्न न हो सो अखण्ड सारे व्यापक होनेसे तो ब्रह्म देशपरिछिन्न नहीं और नित्य होनेसे कालपरिच्छिन्न नहीं और सबका आत्माहोनेसे वस्तुपरिच्छिन्न नहीं इस शरीरमें सच्चिदानन्द भान होताहै वोही ब्रह्महै और जिसकूं ब्रह्म कहतेहैं वोहीसच्चिदानन्दहै जब ऐसा ज्ञान हुआ तब त्वम् पदका अर्थ जो जीव समझ रखा था वो उसी समय जाता रहता है और तत् पदका अर्थ जो परोक्ष था तो भी उसी समय अपरोक्ष होजाता है फिर इस ज्ञानसे जो होता है सो सुनो—जो प्रथम त्वम्

पदका अर्थ जीव समझ रक्खा था सोई अपरोक्ष परमानन्द रूप करके शेष रहजाता है इस प्रकार 'तत्त्वमसि' जो महावाक्यादि उनका अर्थ श्रवण करने से और मनन निदिध्यासन करनेसे जो हुआ अपरोक्ष ज्ञान उस ज्ञानकरके अज्ञान की जो निवृत्ति और परमा नन्दकी प्राप्ति इसीका नाम मोक्ष है ॥

इति श्रीद्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

कर्मकाण्डी और उपासना वाले स्वर्ग वैकुण्ठादि की प्राप्तिकूं सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य सायुज्य नाम करके मुक्ति कहतेहैं सो नाममात्र मुक्तिहै अनित्य होनेसे साक्षात् मुक्ति नहीं जैसे किसी पुरुषकूं कहना कि यो पुरुष सिंह है वो पुरुष साक्षात् सिंह नहीं उसमें सिंहकेसे गुणहैं ऐसे साक्षात् मुक्तिमें जो गुण दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति ये दोनों उनमें भी थोड़े हैं दूसरे अध्यायके अन्तमें जो मुक्ति कही है सो मुक्ति दोप्रकार की है जीवन्मुक्ति १ विदेह मुक्ति २ जीवन्मुक्ति तीन प्रकारकी है श्रेष्ठ १ मध्यम २ कनिष्ठ ३ जीवते हुए उस आनन्दकूं सदा प्राप्त रहना अर्थात् स्वभाव करके निर्विकल्प समाधि रहनी श्रेष्ठ जीवन्मुक्ति १ प्रयत्न करके बहिर्मुख अन्तः-

करण की वृत्तियों कूं निरोध करना मध्यम जीवन्मुक्ति २ यद्यपि दुःख सुखादि अन्तःकरणके धर्म होनेसे आत्माके साथ उनका सम्बन्ध नहीहै । यो विचारभी है तो भी दुःखादि के संबंधकरके अन्तःकरणका व्याकुल होजाना यो कनिष्ठ जीवन्मुक्ति ३ देह पातके पीछे उस आनन्दकूं प्राप्त होना विदेह मुक्ति श्रेष्ठ जीवन्मुक्तिका यो नियम नहीं कि सब ज्ञानियोंकूं श्रेष्ठ जीवन्मुक्तिहो जैसे ओषधि करनेसे रागकी शान्ति होतीहै ऐसे प्रयत्न करनेसे श्रेष्ठ जीवन्मुक्ति भी संपादन होसकती है परंतु कुछ नियम नहीं कि औषधिकरनेसे नियम करके रोगजाता रहता है पुरुषार्थवादी तो यों हीं कहते हैं कि प्रयत्न मुख्यहै जो श्रेष्ठ जीवन्मुक्ति किसी प्रतिबन्ध करके सम्पादन न होसके तो कुछ विदेह मुक्तिमें सन्देह नहीं इस बातकूं सिद्ध करते हैं । ज्ञानकी ७ भूमिकाहैं तीन प्रथमकी ज्ञानकी साधनभूमिका हैं इसलिये वेभी ज्ञानकी भूमिका कही जातीहैं चौथीमें अपरोक्षज्ञान होता है पिछिली तीन जीवन्मुक्ति भूमिका हैं प्रथम का लक्षण योहै शौचस्नानादि आचार गंगाजीसे आदि लेकर तीर्थोंका सेवन विष्णु शिवादिकी पाषाणादि मूर्त्तियों की पूजा अश्वमेध यज्ञसे आदि लेकर यथाशक्ति ब्राह्मण अतिथि अभ्यागतोंकूं अन्न वस्त्रादि देने ऐसे ऐसे और भी बहुत कर्म हैं यो प्रथम भूमिका १ सगुण परमेश्वर के गुणानुवाद सुनकर परमेश्वरमें अनुराग होना और परमे-

श्वरके भक्त जो साधु ब्राह्मण उनमें प्रीति होनी और मन, वाणी, शरीर, धनसे उनका सत्कार करना जो कदाचित् साधु अपने घर चले आवें तो मनकूं आनन्द होना यो जानना हमारा बड़ा भाग्यहै यो मनसे सत्कारहै और वाणीसे ऐसा बोलना महाराज आपका आना बहुत सुन्दर हुआ आप जंगमतीर्थहो हमारे पवित्र करनेके लिये आप आयेहो। और शरीरसे हाथ जोड़कर खड़ा होजाना। चरण सेवासे आदि लेकर टहल करनी अथवा और जगह महात्मा ठहर रहे हों वहां जाकर सेवा करनी और धनसे यथाशक्ति अन्न वस्त्रादि देने और नित्यानित्य वस्तुका विचारना ऐसे ऐसे कर्मोंसे आदि लेकर और भी बहुत कर्महैं यो दूसरी भूमिका २ संसारके पदार्थोंकूं दुःख रूप अनित्य जानकर उनसे वैराग्य होना जैसा श्रीरामचन्द्रजीकूं वैराग्य हुआहै वासिष्ठग्रन्थमें वो कथा प्रथमही वैराग्यप्रकरणमें प्रसिद्धहै और साधनचतुष्टयसंपन्न होकर वेदान्तशास्त्रका श्रवण करना यो तीसरी भूमिका ३ शुक्तिमें रजतवत् संसारकूं मिथ्या जानकर अपने निज स्वरूपका बाध होजाना कि मैं योहूं चौथी भूमिका योही विदेह मुक्तिमें हेतुहै चौथी भूमिकावालेका लक्षण योहै कि जैसे कोई पुरुष समुद्रके तीर खड़ा है जो जलकी तरफकूं देखताहै तो जलहीजल दीखताहै और जब पृथिवीकूं देखताहै तब मन्दिर वृक्षादिही दीखतेहैं

ऐसे जब वो पुरुष अपने स्वरूपका अनुसंधान करताहै तब संसारका अभाव और अपना स्वरूप साक्षात् प्रतीत होताहै और व्यवहारके समय संसारके दुःख सुख शोक मोहादि जैसे पहले थे वैसेही भुने अन्नवत् प्रतीत होतेहैं जैसे भुना अन्न भूख दूर करनेकूं समर्थहै जमनेकूं समर्थ नहीं ऐसे उस ज्ञानीकूं व्यवहार सुख दुःखादिका हेतु है परन्तु जन्मका हेतु नहीं और अज्ञानीकी बराबर उसकूं दुःख सुखभी नहीं होते इस बातकूं भी अभी आगे दृष्टान्त देकर सिद्ध करैंगे चौथी भूमिकामें शरीर या तो चाण्डालके घरमें या काशीमें छूटो आनन्द पूर्वक छूटो या मूर्च्छारोग होकर लोटते पोटते छूटो मुक्तिमें सन्देहनहीं वो मुक्त उसी समय होगया जिससमय उसको ज्ञान हुआ। मूर्च्छादि होनेसे ज्ञानका नाश नहीं होता। जैसे विद्याकूं स्वप्न सुषुप्ति मूर्च्छादिमें भूलभी जाता है परन्तु कुछ अगले दिन नहीं बढ़ता ४ पांचवीं भूमिकाका लक्षण योहै कि जैसे कोई पावकोश समुद्रमें आधे शरीर जलमें खड़ाहो उसकूं बहुत विचारनेसे समुद्रके तीरके मन्दिर बृक्षादि देखा करते हैं वैसे उसकूं संसारका व्यवहार बहुत किसीके सुनने देखनेसे प्रतीत होताहै ५ छठीभूमिकामें गलेतक जंलकी कल्पना करलेनी ६ सांतवींभूमिकामें जलमें प्रवेश होजाना सातवीं भूमिकावालेका शरीर हृदय बीसदिन रहता है क्योंकि भोजनादिका अभाव होजाता

है ७ चौथी भूमिका वालेसे लेकर सातवीं तक एकसे एक सिवाय ब्रह्मवित् कहे जाते हैं, ब्रह्मवित् ४ ब्रह्मविद्वर ५ ब्रह्मविद्वरीयान् ६ ब्रह्मविद्वरिष्ठ ७ मूर्ख योहीं कहते हैं कि जैसा हमने पांचवीं छठीं सातवीं भूमिका लक्षण लिखा है ऐसे ज्ञानी होते हैं और चौथा भूमिकावालेमें बहुत तर्क करते हैं उनकी पूर्व पक्षकी तर्कोंका खण्डन वेदान्तशास्त्रोंमें बहुत लिखा है कुछ एक लेशमात्र यहां भी लिखते हैं। शंकाः—कि जो खावे पीवे नहीं और शरीर इन्द्रियादि करके चेष्टा न करताहो सो ज्ञानी है। उत्तरः--ज्ञान क्या हुआ रोग हुआ ऐसे तो रोगी होते हैं रोगियोंकूं भी ज्ञानी कहा चाहिये। शंकाः—जिसकूं दुःख सुख न प्रतीत होता हो तो ज्ञानीहै। उत्तर—दुःखसुखका अभाव जड़ पदार्थोंमें होता है वे ज्ञानी हैं। शंका—संसार का अनुभव न होना यो ज्ञानका लक्षण है। उत्तरः—संसारका तो सुषुप्ति मूर्च्छा प्रलयादिमें भी अनुभव नहीं होता वहांभी तो संसारका बाध है। प्रश्न—फिर संसारका क्या बाध है और क्या ज्ञानका लक्षण है। उत्तरः—संसार का यो ही बाध है कि जो दूसरे अध्यायमें तीन प्रकार का बाध लिख आये हैं और ज्ञानका भी योही लक्षण है कि जबतक जो शरीर प्रारब्ध कर्मका रचा नष्ट नहीं होता तबतक संसारकूं मिथ्या समझना तात्पर्य्य जबतक संसारमें स्वरूपसे मर्दन नहीं होसका क्योंकि मिथ्या पदार्थकूं मिथ्या जाननेसे उसका अभाव नहीं

होता जैसे बाजीगर के पदार्थ मिथ्या जाननेसे स्वरूप करके मर्दन नहीं होते इस प्रकार यह संसार रहता है परंतु देहपातके पीछे स्वरूपसे भी मर्दन होता है इसमें वेद प्रमाण है अन्यथा वसिष्ठादि ब्रह्मज्ञानी थे इसमें क्या प्रमाण है। शंकाः—ज्ञात तो होगया फिर प्रारब्ध कर्म्मका फल दुःखादि क्यों न नाश हुआ। उत्तरः—तीरनें पुरुषकूं भेदन तो कर दिया आगे क्यों चला और दूसरे कुम्हार ने बर्तन उतारनेके लिये चाक घुमाया बरतन तो उतार लिया फिर चाक क्यों घूमता है। शंकाः—ज्ञानने ससारकू स्वरूपसे और प्रारब्धकर्म्मकूं क्यों न नाश किया। उत्तरः—प्रारब्धकर्म्म और यो संसार मिथ्या भास मुरदेकी नाईं कुछ ज्ञानके विरोध नहीं प्रत्युत ज्ञानकूं उत्साह बढ़ानेवाले हैं जैसे किसी पुरुषकी मारी हुई हजारों लाशें पड़ीहों वो शूर उनको देख देख आनन्द होता है। शंकाः—जो ज्ञानी पूर्ववत् संसार को भोग भोगता रहा तो ज्ञानी अज्ञानीमें क्या भेद हुआ। उत्तरः—ज्ञानी रागपूर्वक संसारके भोग नहीं भोगता जैसे किसीके शिरपर कोई बेगार रखदे तो क्या बेगारके उठानेमें उसको उत्साह है। शंकाः—बेगारीकू तो दुःख होता है जो ज्ञानीकूं भी दुःख हुआ तो ज्ञानका क्या फल हुआ। उत्तरः—ज्ञानीका दुःख मुक्तिके आनन्दमें दबा रहता है जैसे दो बेगारी हैं एक जानता है कि मैं दोघड़ी में छूटूंगा दूसरा नहीं जानता कि मैं

कब छूटूंगा हे वादी। विचार देख दुःख दोनों का सम प्रतीत होताहै परन्तु जानने वाले कूं थोड़ा दुःखहै। नहीं जाननेवाले कूं बहुत दुःखहै। ऐसे ज्ञानी आज्ञानीके दुःखमें बहुतभेदहै। शंकाः—तुमतो जैसे प्रथमथे वैसेही अबभी दीखते हो ज्ञानहोकर कुछ और प्रकारके न हुये। उत्तरः—जिस समय तुमकूं रज्जु में सर्पकी भ्रांति हुईथी उसकूं देखकर कम्पन लगे थे और गिरकर चोट लग गईथी फिरकिसी के उपदेश और अपनी युक्तिसे रज्जुका अनुभव किया तुम कहो कि आपकी सूरत भी बदलीथी कहताहै कि मेरी सूरत तो नहींबदली थी परन्तु अन्तःकरणकीवृत्ति बदल गई थी उत्तर फिर हमारे अन्तःकरणके साक्षी क्या तुम हो जैसे भ्रांतिसमय तुमकूं कँपातीथी पीछे निवृत्ति होगई सूरतनबदली ऐसे हमकूं भ्रांतिथी सो निवृत्ति होगई अपने अन्तःकरण के हम साक्षी हैं। शंकाः—तुम कहतेहो यो जगत् आज्ञानका कार्य्यहै वो आज्ञान तो नाशहोगया कार्य्य उसका कैसे बना रहा। उत्तरः—भ्रांति समय जो तुमकूं कँपातीथी और गिरकर चोट लगीथी फिर जिस समय वोभ्रांति दूरहुई कार्य्य उस भ्रांति का वो कँपा और वो चोट उसीसमय जाती रही थी। शंकाः—कहता है कँपा तो दो घड़ीके पीछे और चोट दशदिनके पीछे होगई थी। उत्तरः— आश्चर्यकी बातहै जो घड़ीभर भ्रान्ति नहीं रहीउसका कार्यतो दशदिन के पीछे गया और हमारा अज्ञान परार्द्ध संख्यासे भी

परेकाथा वो नाश हुआहै उसके कार्य्यकूं कहते हो कि उसी समय क्यों न जाता रहा शरीरपातके पीछे कार्य भी नाश होजावेगा औरभी बहुत दृष्टांतहैं वृक्ष कटनेके पीछे वैसाही हरा प्रतीत होताहै और किसी वस्त्र व-पात्रमें गन्ध रक्खीहो पीछे निकालने के भी कईघड़ी गन्ध बनी रहती है और किसीकूं स्वप्नमें सिंहने झड-पाया वो जाग उठा देखता है कि सिंह नहीं परंतु कंपा दोघड़ी पीछे जातीहै।शंकाः—यो जोतुम भोग भोगतेहो-ये ज्ञानकूं नष्ट करदेंगे। उत्तरः—जीते हुये चूहेने बिला-ईको न मारा तो मरा क्या मारेगा और जैसे कोई वज्र-लगनेसे न मरा क्यों वो तुलीकी तीरसे मरेगा जिसकालमें अज्ञान बढ़ा हुआ था उस समय तो ज्ञान नाश हुआ नहीं अबतो उस अज्ञान कूं ज्ञानसेनाश करदिया उस-का कार्य ये अन्न भक्षणादि तुच्छ पदार्थ ज्ञान कूं क्या नष्ट करेंगे। और दूसरे जो पुरुष चोर जाकूं जान-ताहै वे चोर जार उसके बुरे होने का प्रयत्न नहीं करते और डरते रहतेहै और जो प्रयत्नकरेभी तो वो चैतन्यहै ऐसे ज्ञानी इन भोगरूप चोरों को जानताहै और तीसरे कोई स्त्री नेत्र शरीरादि करके तो सुन्दरहो परन्तु उसकी उपस्थ इंद्रियमें गरमीका विकारहो जो उसबि-कारकूं जानताहै उसकू उस स्त्रीकेहाव भाव कटाक्ष नहीं मोहते न वो स्त्री उसके सामने हावभाव कटाक्षकरतीहै ऐसे ज्ञानी इस मायारूपी स्त्रीके अवगुणोंकूं जानताहै।शंका।

जोतुमसदा "ब्रह्माऽहमस्मिब्रह्माऽहमऽस्मि" ऐसाअनुसंधा न न करते रहोगे तब जो ब्रह्मज्ञान नष्ट होजावेगा।उत्तरःतुम "ब्राह्मणोऽहम्‌ब्राह्मणोऽहम्' इसकासदाअनुसंधाननकरो गे तो भूल जावोगे जैसे तुम अपनी जातिकूं नहीं भूलते वैसे हमने एक बेर वस्तुका निश्चय करलियाहै वो हमारा ज्ञान कैसे जाता रहेगा और आपका निश्चय तो झूंठाहै एकयुक्तिसे जाता रहता है यो भी कहता है कि मेरा शरीरहै और योभी कहताहै कि मैं ब्राह्मण हूं कितना विरोध है ऐसा निश्चय तो आपका बिना अनुसंधानके बना रहेगा और हमारा जो निश्चय है कि सहस्रों श्रुति, स्मृति, युक्ति और अनुभव करके और तुम सदृश बादियोंके मतोकूं खंडन करके जो निश्चय कियाहै वो बिना अनु- संधानके जाता रहेगा। शंकाः—जिनकूं शाप अनुग्रहकी सामर्थ्य होतीहै वे ज्ञानी हैं। उत्तरः—शाप अनुग्रह ज्ञान का फल नहीं तपका फलहै। शंकाः—ज्ञान विना तपके कैसे हुआ। उत्तरः—तप दो प्रकारका है एक तप शाप अनुग्रहकी सामर्थ्य करा देता है और एक तप ज्ञानकूं उत्पन्न करता है। शंकाः—व्यास वशिष्ठ, सनकादि भी तो ज्ञानीहैं। उत्तरः—उनके दोनों प्रकारका तप है हमारे एकही है दूसरा तप न होनेमें कुछ ज्ञानीकी क्षति नहीं है जैसे जौहरी वस्त्रादिकी परीक्षा न कर सके तो उस जौहरीकी क्या क्षतिहै ऐसेही ज्ञानी गंडा

तावीज प्रेतादिकोंके मंत्रादि न जानता हो तो क्या ज्ञानी की क्षतिहै तात्पर्य ऐसी ऐसी तर्कोंका खंडन बहुत वेदान्त शास्त्रमें लिख रहाहै मुक्तिकी इच्छावाला ऐसे २ बादोंमें बुद्धिको न समाप्तकरे केवल वेदवाक्यमें विश्वास करे और जो पुराणादिमें जड़भरतादि लिखेहैं कोई कहे कि ऐसे ज्ञानी होते हैं तो क्या उसके मुखमें मारनेके लिये श्रुति-रूप वज्र नहींहै तात्पर्य वेद ऐसा भी कहतेहैं जैसे जड़भरतादि हुऐहैं औरऐसा भी कहतेहैं ज्ञानी अपनी अवस्था वालोंके साथ विहार करता हुआ और सवारियोंमें बैठा-हुआ स्त्रियोंके साथ रमता हुआ वो ज्ञानी अपनी दृष्टिमें कुछ नहींकरताहै, बशिष्ठ,याज्ञवाल्क्यसेआदिलेकरबहुत प्रसिद्धहैं और जनक चूड़ालादि बहुत स्त्रीतक ज्ञानी हुए हैं क्या सब जड़भरतवत् आचरण करते थे तात्पर्य यों है मूर्ख लोग वे शास्त्रके एक २ देशकूं सुनकर वेद-शास्त्रके तात्पर्यकूं न जानकर कुछ २ बक्तेहैं उनका निश्चय उनके रहो हमको क्या काम है । हम सिद्धान्त कहते हैं प्रथम तो जड़भरतादि भी खाना सोना आदि त्यागकरके काष्ठपाषाणवत् नहीं रहे संगकी भांतिसे उदासीन रहतेथे क्योंकिसंगीलोगों करके बांध होजाताहै और निःसंगसुख कूं प्राप्त होताहै इसलिये सदा सुखकी इच्छावालोंने संग त्यागदेना ।ज्ञानकी परीक्षाके लिखे वैराग्य उपरति बोध कूं हेतु १ स्वरूप २ कार्य ३ अवधि ४ इन चार चारभेद

करके लिखते हैं वैराग्यके हेतु आदि ये हैं॥ शब्दादि विषयोंमें दोषदृष्टिहोनी १ त्यागदेना २ फिर भोगोंमें दीनता न होनी ३ ब्रह्मलोककूं तृणवत् समझना ४ उपरति के हेतु आदि ये हैं॥ यम नियमादि १ अन्तःकरणका निरोध २ व्यवहारका बहुत कम होजाना अर्थात् खाने सोनेमें भी संकोच ३ सुषुप्तिवत् जाग्रत् अवस्था रहनी॥ बोधके हेतु आदिये हैं॥ श्रवणादि १ तत्त्वमिथ्याका जानलेना २ फिर ग्रंथिका उदय न होना अर्थात् देहादिमें अहंबुद्धि न होनी ३ जैसे प्रथम देहादिमें अहम्बुद्धि थी वैसीही स्वरूपमें दृढ़बुद्धि होजानी ४ मुक्तिकी इच्छा वालोंके वैराग्यादिके हेतु आदि तारतम्यताकरके रहते हैं क्योंकि सबके कर्म एक प्रकारके नहीं इन सबमें कि जो वैराग्यादिके हेतु आदि लिखे हैं उनमें तत्त्वमिथ्याका जान लेना जो बोधका स्वरूप लिखा है योही मुक्तिका कारण है और सब ज्ञानियोंके योही एक रस है जो वैराग्यादिके हेतु आदि ऊपर लिखे हैं वैसे जो किसीके हों तो बहुत पुण्यकाफल है उससे सिवाय कोई पुण्य नहीं और जो किसी प्रतिबन्ध करके तीनों एक जगे न देखनेमें आवें तो उनके फल ऐसे होंगे कि वैराग्य उपरति तो पूर्णहो बोध किसी प्रतिबन्धसे न हो तो मुक्ति नहीं होगी। तपके बलसे ब्रह्म साकारकी प्राप्ति होगी और जो बोध है वैराग्य उपरति इस जन्ममें न देखनेमें आवे तो मुक्ति निश्चय होगी, परंतु जबतक यो

शरीर रहेगा हर्षशोकादि आभास मात्र बने रहेंगे बोधका स्वरूप सब ज्ञानियोंके एक रस है वैराग्य उपरति में तारतम्यता है जैसे १०० गौ दूध सबका एकरंग एक रस और व्यक्ति दुर्बलापन मोटापन स्वभावादि पृथक् २ ऐसे १०० ज्ञानी ज्ञान सबका एकरस और व्यवहार चलनश्वभावादि सत्त्वादि गुणोंकी उपाधिसे पृथक् पृथक् अर्थात् किसीके सत्त्वगुण बहुत किसीके रजतम बहुत हैं सत्त्वगुणी शुकदेव, बामदेव, जड़भरथ, सनकादि, और रजोगुणी जनक, चुडालादि और तमोगुणी दुर्वासादि सत्त्व रजं तमोगुणी बहुत वर्तनेसे सत्त्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणीकहे जाते हैं, परंतु तीनों गुण सबकेतारतम्यता करके वर्त्तते हैं॥ ज्ञानके होने और वैराग्य उपरतिसिद्धि लक्ष्मी आदिके न होनेमें यों व्यवस्था है ज्ञान उपरति वैराग्य सिद्धिलक्ष्मी आदिपुण्यका फलहै जिसके पूर्ण पुण्य हुआ जैसे जलसे घट भरा रहता है उसके तो वैराग्य उपरति ज्ञान सिद्धि लक्ष्मीआदि सब होते हैं और जो केवल ज्ञानहो वैराग्यादि न हो तो उससे भी थोड़े पुण्यका फलहै और जो ज्ञान न हो वैराग्य उपरतिहो उससे भी थोड़े पुण्यका फल है और जो वैराग्य ज्ञान तीनों न हों सिद्धि लक्ष्मी आदि हों उससे भी थोड़े पुण्यका फल है और जो सिद्धि वैराग्यादि न हो केवल लक्ष्मी राज्यादि हो उससे भी थोड़े पुण्यका फल है राजा से लगाकर कंगालपर्यन्त पुण्यकी तारतम्यता कल्पना

कर लेनी पुण्यकी तारतम्यसे ज्ञानियों के वैराग्यकी भी तारतम्यता कल्पना कर लेनी जो तीनों वैराग्यादि किसी ज्ञानीके देखनेमें आवे तो वो ज्ञानी ऐसा है जैसा मनुष्योंमें चक्रवर्ती राजा जैसे जड़भरत शुकादि हैं ऐसा नहीं समझना कि जो ऐसेही हों वोही ज्ञानी हैं और ऐसोहीं की मुक्ति होती है । शंकाः—फिर ऐसे पुरुषों की शास्त्रमें बहुत प्रशंसा क्यों लिखी है । उत्तरः—ऐसे पुरुषों कूं जीवन्मुक्ति का बहुत आनन्द रहताहै जैसे चक्रवर्ती राजाकूं मनुष्यानन्द बहुत रहता है और जैसे राजासे जो कमलक्ष्मी आदि वालेहैं उनकूं भी तो आनंद तारम्यता करके रहताहै और वे भी तो मनुष्यही कहे जाते हैं । ऐसे वैराग्य उपरतिमें कम जो ज्ञानीहैं वेभी ज्ञानीहैं अज्ञानी नहीं । शंकाः--ज्ञानीके लक्षण शास्त्रमें ऐसे ऐसे लिखे है क्रोध, शोक, भय न होना जितेन्द्रिय, क्षमा, वैराग्य, दया निर्लोभ, दाता, सबका प्यारा होना ॥

टी०—दाता होना अर्थात् अभय दानदेना अभय दान दो प्रकारका है । एक यो अपने शरीर वाणी मनसे किसी कूं भय न देना दूसरे ज्ञानका उपदेश करके संसारके दुःखोंसे अभय करदेना ॥

मू०—ये ज्ञानके चिह्नहैं ऐसे २ वाक्यों की क्या गति होगी । उत्तरः--ऐसे २ वाक्य प्रथम तो ज्ञान होनेके लिये और ज्ञानके पीछे जीमन्मुक्ति की सिद्धिके लिये ताकी-

दमें हैं एकादशीके व्रतवत् नियम नहीं जो एक दाना भी अन्नका मुखमें जापड़े व्रत टूट जावे ऐसेही जो कभी किसी पापके उदय होनेसे ज्ञानीकूं काम क्रोध आजावे तो ज्ञानही जाता रहता जिस कालमें सनकादि महाज्ञानी श्रीनारायणजी के मिलने के लिये वैकुण्ठकूं गयेथे नारायण के पार्षदों ने जब उनकूं भीतर जानेके लिये मने किया तब उनको क्रोध आगया फिर शाप देदिया अर्थसे योंभी प्रतीत होताहै कामके विना क्रोध नहीं आता विचारो ज्ञान उनका नहीं जाता रहा और यो जो शंका करे कि वे ईश्वरथे समर्थ थे अर्थात् वे ईश्वरकी कोटी में हैं तो मनुष्य कोटिमें ऐसी २ अनेक कथा पुराणोंमें वेदोंमें दुर्वासादि की प्रसिद्धहैं और दूसरे यो कैमुतिकन्याय है जो समर्थ पुरुषोंकूं ईश्वरोंकूं काम क्रोध आये तो जीवका तो यो अनादि स्वभाव है जीवको कामक्रोधके आजानेमें क्या आश्चर्यहै । शंकाः—ज्ञानीका दूसरेकूं उपदेश करनेसे क्या कामहै । उत्तरः—ज्ञानीकूं जगत् में योंही एक करनेसे योग्यहै कि जैसे बने अज्ञानीकूं ब्रह्मतत्त्वका उपदेशकरे । शंकाः—श्रीभगवान् तो यों कहतेहैं कि, कर्मसंगी पुरुषोंकूं कर्मसे न हटावें । उत्तरः—श्रीभगवान्ने कर्मसंगी पुरुषोंका उसी जगह विशेषण देरक्खा है कि अज्ञानी कर्मसंगीकूं ब्रह्मतत्त्वका उपदेश न करे । शंकाः—ज्ञानियोंकी व्यवस्था तो ऐसी २ सुनी जाती है

कि जब उनको ज्ञान हुआ फिर वे किसीसे न मिलें मौन होकर उत्तराखण्डको चलेगये। उत्तरः-यो लक्षण अवधिका है कोई ऐसाभी हुआहो, परन्तु सबका नियम नहीं और दूसरे सत्ययुगादि ऐसे समयथे कि अस्थि आदिमें प्राण बने रहतेथे और कुछ कविपुरुषोंका नियम है कि बढ़ाकर लिखते हैं और जो यो न मानो तो ग्रन्थोंका बनना उपदेश करना यो विना प्रवृत्तिका कैसे बने। विद्याका लोप हुआ चाहिये श्रीकृष्णचन्द्र महाराज कहतेहैं कि ज्ञानके लिये गुरुजीके पास जावे हे अर्जुन! तुमको वे गुरु उपदेश करेंगे देखिये जो प्रवृत्त होंगे तो उपदेश करेगे और जो बोलें बतलावेंगे नहीं दृष्टांत युक्ति न देंगे अथवा उनका पताही न लगेगा तो बोध कैसे होगा वेद कहते हैं कि आचार्यवान् पुरुष ब्रह्म कूं जानताहै तात्पर्य योहीहै कि मूर्ख वेदशास्त्रके हृदयकूं न जानकर कुछका कुछ वक्ताहैऐसे २ सिद्धान्त शारीरक भाष्य पंचदशी आदि ग्रन्थोंमें श्रुति स्मृति प्रमाण देदेकर सिद्धकर रक्खे हैं जिस किसीके संदेह हो वहांसे निश्चय करे और जिसकी गुरु वेदांतमें श्रद्धाहै वो तो संशयविपर्ययरहित होकर निश्चय मुक्त होगा ॥

इति श्रीमदानन्दाऽमृतवर्षिण्यां वेदान्तशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

जो किसी पुरुषकूं किसी पापके प्रतिबंधसे महावाक्यके

अर्थमें अपरोक्षज्ञान न होवे तो वो फिर साधनकरे प्रथम अध्यायसु जो विवेकादि चार साधन कहेहैं मुख्य सार वेही हैं उनहीं चारकूं आचार्योंने नाना प्रकारसे लाखों श्लोकोंमेंऔर भाषामें कहाहै उनहीं चारोंका अर्थ स्फुट होनेके लिये उनहीं चार साधनोंकूं अब और प्रकारके लिखतेहैं ज्ञानके साधन दो प्रकारकेहैं अंतरंग १ बहिरंग २ अंतरंग मुख्यहै बहिरंग गौणहै बहिरंग साधन ये कहलातेहैं शौच स्नान, सन्ध्यावन्दन वेदशास्त्रोंका पढ़ना, पाठ करना, तर्पण, हवनकरना अतिथि अभ्यागतका पूजन करना, सेवा करनी, अन्न देना ऐसे २ और भी बहुत नित्य कर्म हैं उनके न करनेमें पापहै करनेसे पापकी निवृत्ति होती है, और पुत्रादिके जन्मादिमें जातिकर्म श्रद्धादि करने पूर्णमासी संक्रांत्यादिमें तीर्थोंमें जाना, स्नान दान करना, निष्काम यज्ञकरने ऐसे २ औरभी बहुत नैमित्त कर्महैं और कोई अपनेसे खोटा काम शास्त्रसे विरुद्ध हो जावे उसकी निवृत्तिके लिये चांद्रायणादि व्रत और श्रीगंगाजीमें स्नानादि करने ऐसे २ और भी प्रायश्चित्त कर्महैं और बद्रीनाराणादिके दर्शन करने, तीर्थोंका सेवन करना, पाषाणादि मूर्तियोंकूं पूजन करना परिक्रमा करनी, झांझ घंटादि बजाने, चौके धोतीसे रोटीखानी, यों खाना, यों न खाना इस बरतनमें खाना इस बरतनमें न खाना इसके हाथका खाना, इसके हाथका न खाना, यो ब्राह्मण यो क्षत्री वर्णादि, यो ब्रह्मचारी, यो गृहस्थी आदि आश्रमी

इस प्रकारके और भी बहुत बहिरङ्ग साधन हैं। पुराणोंमें धर्म शास्त्रादिमें उनका बहुत विस्तार है वहांसे सुनकर संपादन करे पर प्रयोजन उनका अन्तःकरणकी शुद्धि है बहिरंग प्रथम मन्दबुद्धिके लिये है। अन्तरंग बुद्धिमान्के लिये है बहिरंगसाधन अन्तरंग साधनोंकी इच्छा रखते हैं अन्तरंग बहिरंगसाधनोंकी इच्छा नहीं रखते और ऐसा जो कहते हैं कि कर्मकांड और उपासनाकांड ज्ञानके साधन हैं वहां जो व्यवस्था है जो उपासना इस प्रकारकी है कि पाषाणादि मूर्तियोंका पूजन करना और झांझ घंटा बजाने परिक्रमा करनी और भी बहुत ऐसी ऐसी उपासनाका बहिरंग साधनोंमें अन्तर्भाव है और परमेश्वरका ध्यान करना प्रेमकरना विषयोंसे एककर चित्तकूं परमेश्वरमें लगाना ऐसी ऐसी उपासनाका अन्तरंग साधनोंमें अन्तर्भाव है अन्तरंग साधन ये कहलाते हैं मनमें मान नहीं रखना कि ऐसे पंडित जातिमें ब्राह्मण धनवाले औरअपने गुणोंकी औरोंसे श्लाघा करानेकी इच्छा न रखनी इसका नाम अमानित्व है १ धर्मध्वज न होना, जो अपनेमें थोड़े गुणहों तो औरोंके सामने बहुत नहीं प्रकट करने ऐसा हम जानतेहैं ऐसी पूजा करते हैं ऐसे ऐसे पाषण्डोंका त्याग करना इसका नाम अदंभित्व है २ मन वाणी शरीरसे किसीकूं दुःख न देना इसका नाम अहिंसा है ३ बेप्रयोजन किसीने आपकू बुरा बोला अथवा मार भी दिया समर्थ होकर उसकूं कुछ न कहना यो

समझना कि प्रारब्धका भोग है इसका कुछ दोष नहीं इसका नाम क्षमा है ४ प्रसन्नचेष्टा रखनी नम्र होकर चलाना अकड़ ऐंठ कर न चलना नम्र बोलना मन्दमुसकान पूर्वक ऐसा बोले मानोमुखसे फूल झड़ते हैं दूसरेका क्षोभित हृदयभी शान्त होजावे इसका नाम कोमलता है ५ गुरूकी मन वाणी शरीरकरके उपासना करनी ६ व्यवहारमें छल न करना अंतःकरणगत जो दोष हैं उनकूं दूरकरना इसका नाम अन्तरशौच है और बहिःशौच जलमृत्तिका करके ७ सन्मार्गमें स्थित रहना जैसे जो जगत्में कहानी हैं।'धर्म किये जो होवे हानि ।तोभी न छोड़ धर्मकी बानि ॥'एक इतिहास भी लिखते हैं एक ब्राह्मण बाल्य अवस्थासे ठाकुरकी सेवा करता था कोई उससे पाप बुद्धिपूर्वक नहीं बनाथा एकदिन उसकूं रस्तेमें चार आदमियोंने घेरलिया जो कुछ उस पै था छीन लिया और कहा कि तुमकूं मारेंगे ब्राह्मणने विचारा कि मैंने बाल्यअवस्थासे ठाकुर सेवाकरी है कोई पाप नहीं किया ये मुझकूं वृथा मारते हैं सो मारो परंतु जो ये कहैं तो ठाकुर जीको तो तीर्थमें पधार दूं कोई वहां पास जलाशय था उनसे आज्ञा लेकर ठाकुरजीका सिंहासन हाथमें लेकर कहा हे परमेश्वर ! बाल्य अवस्थासे आपकी सेवा करीथी आज उसका यह फल है कि विनापाप मारा जाता हूं । वहां आकाशवाणी हुई कि तुमने पूर्व जन्ममें इन चारोंको एक २ बेर

माराथा यो पूजा का फल है जो तुमकूं ये चारों एक-
बेर मारतेहैं यो सुनकर चारों आदमी वहां गये बूझा
कि तुम किससे बात करते थे उसने कहा तुमकूं क्या
कामहै जो मुझकूं मारना है तो मार यो बहुत बेर जो
उन्होंने बूझा फिर सब व्यवस्था ठाकुरसेवादिकी सुनादी
चारोंने उसकूं छोड़ दिया और जो कुछ उससे छीनाथा
दे दिया और कहा कि हम चारों तेरे पिछले किये
का इसलोक परलोकमें बदला नहीं चाहते ८ देहका
निग्रह करना रात्रिका जो बीच उसमें डेढ़पहर सोना
उससे सिवाय आसन पर सीधा स्नानादि कियाके
विना बैठकर श्रवणादि करते रहना ९ शब्दादि विषयों
से वैराग्य करना १० अहंकार न करना कि मैं ऐसा
वैराग्य वाला हूं ११ जन्म मृत्यु जरा व्याधिमें दुःख और
दोषभीहैं बारम्बार उनका अनुसंधान करते रहना क्योंकि
जबतक शरीरकूं किसी रोगने नहीं ग्रसा श्रोत्रादि इन्द्रिय
भी बने रहते हैं जरा भी न होवै तबतकही कुछ पुरु-
षार्थ हो सकता है कोई कहै कि साहब जब प्यास लगेगी
तबहीं कुँआ खोदलेंगे पीछेकी बात किसने देखी है
जैसे प्यास समय वो त्राहि त्राहि करके मरजाता है ऐसे-
ही जो बनेकाममें मोक्षका उपाय नहीं करते पीछे वही
व्यवस्था होतीहै १२ पुत्र दारादि में आसक्ति न करनी
अनित्य जानकर प्रीतिका त्याग करना १३ पुत्रादिके
दुःखसुख में यो अध्यासन करना कि मैं सुखी दुःखीहूं १४

इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिमें समचित्त रहना क्योंकि लाभ हानि दिन रात्रि ऋतु युगादिवत् बदलते रहते हैं अष्टावक्र-जी कहतेहैं कौनसी वो अवस्था और कालहै कि जिस-में प्राणियों को द्वंद्व, हर्ष, शोक, हानि, लाभ, सुख, दुःखादि नहीं रहते जो परायेवश होनेवाले कार्य हैं उनको जो प्रतीकार होता तो नल राम युधिष्ठिरादि दुःखक-रके क्यों दुःखी होते १५ परमेश्वरके विषय अनन्य योगकरके भक्तिकरनी अर्थात् परमेश्वरके बिना नहीं हैं भजनेके योग जिसभक्तिमें ऐसी अव्यभिचारिणी भक्ति करनी तात्पर्य सर्वात्मदृष्टिहोना १६ एकांतदेश शुद्ध-चित्त का प्रसन्न करनेवालाहो जिसजगह सिंह सर्प चौरादि की भीति न हो और आपकूं स्त्री आदि करके विक्षेप न होवे उस देशका सेवन करना १७ प्राकृत जो जन कि जो स्त्रीकासंग और खाना सोनादि इसीकूं कहते हैं कि इस शरीरहुएका योही फलहै ऐसोंके समीप नहीं बैठना १८ वेदान्त शास्त्रके श्रवणादि विचारनेमे सदा लगे रहना तत्त्व पदार्थों की जो सिद्धि उसी में निष्ठा रखनी तीसरे अध्याय में भी लिख आयेहैं कि ज्ञानके हेतु श्रवणादि हैं ज्ञानकेहोनेमें ये मुख्य साध-नहैं इसी बात कूं प्रथम तो वेद भगवान् ने कहा है फिर व्यासजीने भी सूत्रमें कहाहै कि बारम्बार श्रवण करना एकही वेर न करना पंचदशीकार भी कहते हैं कि मन वाणी आदितककूं सावकाश नहीं देना सोने मरने पर्यन्त

वेदान्त शास्त्रकी चिंता करके कालकूं विचारना तात्पर्य श्रीकृष्ण श्रीशंकराचार्य भगवान्‌से आदि लेकर सब आचार्य इसी बातकूं सिद्ध करतेहैं कि मुक्तिकी इच्छावाले वेदान्त शास्त्र बाम्बार श्रवण करना वेदान्त शास्त्रके विना और पुराण शास्त्रोंका श्रवण न करना इसका भी नियम करदियाहै क्योंकि बुद्धि एकहै विचल न जावे वसिष्ठजी भी कहतेहैं कर्म वो है जो बन्धनके लिये न हो विद्या वो है जो मुक्तिके लिये हो निःकाम कर्मके विना और कर्म केवल आयासके लिये है ब्रह्मविद्याके विना और न्यायशास्त्रादि चित्रकारी आदिवत् विद्याहै १९सबसे सिवाय इस देहका फल मुक्तिकूंसमझनामुक्तिकेसाधनोंमें ऐसे प्रलय करना जैसे किसीके शरीरमें अग्नि लगजावे वस्त्र बाल जलनेलगे जैसे वो गंगा जीकूं दौड़ताहै जो कोई रस्तेमें एक बात भी करले अथवा लोभ देकर खड़ा रक्खे तो नहीं खड़ाहोता ऐसे संसारके तापोंमें तापित हुआ यो पुरुष ब्रह्मविद्या गंगाजीकूं जल्दी प्रसन्न करके प्राप्तहो स्त्री धन वस्त्रादिजो रचे हुए मायाके झूंठे अनित्य दुःखदायी पदार्थ हैं उनमें भोगबुद्धिकरके पतंगवत् नष्ट न हो २० ये बीस साधन श्रीकृष्णचन्द्रने गीता शास्त्रमें कहे हैं और २६ साधन दैवी सम्पत्के कहेहैं उनकूं भी सुनो अभय होना किसीसे इसलोक परलोकमें भय न करना तात्पर्य पापात्माकूं भयहुआ करताहै १ अन्तःकरणकूं

भलेप्रकार शुद्ध करना २ ब्रह्मज्ञानका जो उपाय उसमें लगे रहना ३ दान करना यथाशक्ति कुछ अपने पास न हो तो अभय दानदेना ४ इन्द्रियों कूं अपने अपने विषयोंसे रोकना ५ द्रव्ययज्ञ चान्द्रायणव्रतादि तपयज्ञ उपयज्ञ पढ़ना पाठकरना यो यज्ञचित्तवृत्तिनिरोधयोगयज्ञ ऐसे ऐसे यज्ञसे लगाकर ज्ञानयज्ञ पर्यन्त जैसा अपने कूं अधिकारहो करते रहना ६ वेदशास्त्रोंका नित्यपढ़ना पाठकरना ७ अपने धर्मका अनुष्ठान करना ८ कोमलता ९ अहिंसा १० सत्य बोलना जो जो प्रत्यक्षादि प्रमाण करके भले प्रकार सिद्धकरलियाहै ११ क्रोध न करना तत्काल पश्चात्काल केवल दुःखका हेतुहै जिस समय क्रोध आवे वो समय किसी प्रकार वितावे पीछे विचारेजो उस समयमें ऐसा कहता करता तो क्या होता १२ त्याग करना १३ चित्त कूं शान्त करना १४ पीछे किसीके अवगुण नहीं कहने लिखा है कि जो किया हुआ अवगुण किसीका कहे तो बराबरका पापी होता है और जो कुछ भलाकर बढाकर कहे तो दूना पापी होता है जो अपने सामने किसीके अवगुण कहे प्रथम उसीकूं पापी जाने १५ दया अर्थात् किसी कूंदुःख न देना और जो बने तो दूसरेका निवृत्तकर देना १६ लोलुप न होना अर्थात् कुछ पदार्थके लिये पामरोंके सामने दीनता न करनी १७ क्रूर कठोर चित्त न होना १८ खोटे कामोंमें

लोकलज्जा रखनी वहां यो न समझना कि मेरे निन्दा स्तुति मान अपमान बराबर हैं १९ चपल न होना अर्थात् वृथा क्रिया न करनी २० तेजस्वी रहना राजा आदिके छायामें न दबना जैसे और आदमी हैं ऐसेवेभी हैं २१ क्षमा २२ धैर्य सत्त्वगुणी अर्थात् दुःख सुख भूंख प्यास लाभ हान्यादिमें चित्तकूं स्थिर करना २३ शौच २४ किसीसे द्रोह न करना २५ चारगुण सम्पादन करनेसे चित्त प्रसन्न होजाता चित्तके प्रसन्न होनेसे समस्त दुःख नाश होजाते हैं जो कि आपसे जाति विद्यामें बड़े हैं उनसे द्वेष न करना १ बराबरकेसे मित्रता रखनी २ छोटों पर दया करुणा करनी ३ पापी चोर जारोंकी उपेक्षा करनी ४ आत्माके विषय पूजाको अभिमान न रखना कि हम पूजाके योग्य हैं जो दैवी सम्पत्को पुरुष है उसमें ये गुण स्वभाव करके रहते हैं जिसमें ये गुण होंगे वो निश्चय मुक्त होवेगा और आसुरी सम्पत् अवगुण दंभ दर्प काम क्रोध लोभादि बहुत हैं गीता-शास्त्रमें लिखेहैं कुछ थोड़ेसे इस ग्रन्थमें भी नवें अध्यायमें लिखे हैं वे बंधकेलिये हैं जिसकूं मुक्त होना है वहांसे निश्चय करके उनसे बाजित रहे दैवीसम्पत्के अनुष्ठान करनेसे आसुरी सम्पत्का तिरस्कार होजाता है आसुरी सम्पत्के वर्जनेसे दैवीसम्पतके गुणोंका अनुष्ठान होजाता है जो लक्षण स्वभावसे ज्ञानीके रहते हैं और साधककू

प्रयत्न करनेसे सिद्ध होते हैं उनकूं इस प्रश्नके उत्तरमें लिखते हैं। प्रश्नः—कैसे पुरुषकूं लोग ज्ञानी कहतेहैं १ और कैसे वो ज्ञानी बोलता है २ बैठता है ३ चलता है ४। उत्तरः—जिस कालमें यों पुरुष जितनी मनमें बासना है सबकूं त्याग करके निजानन्द करके तुष्ट रहता है दुःखोंमें दुःख सुखमें सुख नहीं मानता दूर होगये हैं भयाराम क्रोध जिसके उसकूं ज्ञानी कहते हैं १ शुभ अशुभको प्राप्त होकर किसी जगह प्रीति नहीं करता प्रियकूं प्राप्त होकर हर्ष नहीं करता अप्रियकूं प्राप्त होकर शोक नहीं करता साक्षी हुआ बोलता है २ मुक्तिमें यत्न-करनेवाले विचारवान्‌के मनकूंभी जो इंद्रिय हरलेते हैं उन सब इंद्रियोंकूं रोककर परमेश्वरपरायण हुआ बैठा रहता है ३ सारी कामनाका त्याग करके निर्माण हुआ और जो कामना फिर प्राप्तहों उनमें ममता इच्छा नहीं करता हुआ निरहंकार हुआ विचरता रहता है ४ फिर भी ज्ञानीका लक्षण और प्रकार करके सुनो यो ज्ञानीका लक्षण स्वसंवेद और परवेद है उदासीनवत् स्थित हुआ॥

टी०—उदासीनवत् लिखनेमें यो शंका है कि उदासीनही क्यों न कहा? समाधान यो है दो मनुष्य झगड़ा करनेवालोंमें कोई तीसरा भी उदासीन चला आवे वो देखता रहे चला जावे तो झगड़ा करनेवालोंकी कुछ हानि नहीं होती परंतु आत्मा उदासीनवत् तीन गुणोंके झगड़ेका द्रष्टा है जो चला जावे अर्थात् उनका अभिमान छोड़दे तो झगड़ा करनेवाले भी नहीं रहते इसलिये उदासीनवत् कहा।

मू०--गुणों करके नहीं विचलता है यो विचारता रहता है कि गुण वर्तरहे हैं समान हैं पाषाण सोना निंदा स्तुति मित्र शत्रु मान अपमान जिसके सारे आरम्भोंके त्याग करनेका स्वभावहै जिसका उसकूं ज्ञानी गुणातीत स्थितप्रज्ञ कहते हैं और जो ज्ञानी का केवल स्वसंवेद्य लक्षण है॥ सत्त्वगुणका जो कार्य प्रकाशादि रजोगुणका जो कार्य प्रवृत्ति आदि तमोगुणका जो कार्य मोहादि जो अपने आप प्रारब्ध के बलसे प्राप्तहों तब कुछ हर्ष शोक नहीं करता जो निवृत्त होजावे तब कुछ हर्ष शोक नहीं करता मुक्तिकी इच्छावाले के तो सत्त्वगुणमें राग हर्ष और रज तमोगुण में द्वेष शोक होता है ऐसे२साधन गीता शास्त्रादिमें बहुत लिखे हैं तात्पर्य यो है जैसे बने शरीर इन्द्रिय प्राण अंतःकरणकूं नित्य प्रतिदिन सिवाय २ अभ्यास करके निरोध करके वशिष्ठजी कहते हैं जैसे अपने हाथसे हाथ दांतसे दांत मलकर हाहाकारादि शब्द करके मनकूं वशकरे विषयाकार अंतःकरणकी वृत्ति सूक्ष्म करने से जो अपना स्वरूप हुआ २ नहीं प्रतीत होता सो स्वरूप ज्ञानद्वारा अपरोक्ष होजाताहै हुई वस्तु न प्रतीत होतीहो इसमें दृष्टान्त कहते हैं जैसे १० लड़कों में पढ़ता हुआ किसीका लड़का उस लड़के का शब्द बाहर से पृथक् भलेप्रकार नहीं प्रतीत होता अर्थात् उसकूं उसका पिता दूसरेसे यो नहीं कह सकता कि यो मेरा लड़का पढ़ता

है ऐसेही जिसके इन्द्रियादि अपने अपने विषयोंमें प्रवृत्त होरहे हों उसकूं ज्ञान होना कठिनहै जैसे जो वे९लड़के पढ़ने से चुप होजावें अथवा शनैः शनैः पढ़ैं और वो लड़का अपने स्वभावक अनुसार पढ़ता रहै तब लड़केका शब्द निश्चय होसकता है ऐसेही जो विषयाकार अन्तःकरण की वृत्ति सूक्ष्म होजावें तब अपना स्वरूप भले-प्रकार प्रतीत होसकता है इलिये अवश्य अन्तःकरणकी वृत्ति सूक्ष्म करदेनी योग्य हैं इन्द्रियोंके रोकने से अन्तःकरणकी वृत्ति सूक्ष्म होतीहैं इसमें भी दृष्टांत कह-तेहैं जैसे किसी तालाब में दश गूल लग रहीहों उसकूं जो सुखाना हो तो प्रथम गूल बन्दकरे फिर सूर्यके तप-नेसे तालाब सूखजाताहै ऐसे प्रथम इन्द्रियोंकूं निरोध करे फिर विचाररूप सूर्य तपावे इसप्रकार अन्तःकरणकी वृत्ति सूक्ष्म होसकती हैं भला इसबातकी परीक्षाके लिये प्रथम महीनाभर तो ऐसा अभ्यासकर देखो कित-नाभेद पड़ताहै जिसके अभ्यास करनेसे नित्य प्रतिदिन उसका फल करामलकवत् प्रतीत होताहो फिर उसकूं न करो तो कहो उससे सिवाय और कौन पशुहै॥ अन्तःकरणकी वृत्तियोंका सूक्ष्म होजाना इसीकूं मनो-नाश कहतेहैं ऐसेरसाधनों करकेयुक्त जो पुरुष सोज्ञान-द्वारा अनायास निरतिशय आनंदकूं प्राप्त होता है॥

इति श्रीआनन्दाऽमृतवर्षिण्यां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पंचमोऽध्यायः ।

मू०—सत्त्वगुणके बढ़ाने से रजोगुण तमोगुणके कमकरनेसे ज्ञानद्वारा अपने स्वरूप की प्राप्ति होतीहै इसलिये सत्त्वगुणके बढ़ाने रज तमो गुण कम करने के लिये तीनों गुणोंका लक्षण लिखते हैं जिस प्रकार ये तीनों गुण देहके विषय आत्माकूं बन्धन करते हैं सोसुनो सत्त्वगुण निर्मल होने से प्रकाशक शान्तरूप है कोई उपद्रव उसमें नहीं शान्तरूप होनेसे अपना कार्य जो सुख उसके साथ बन्धन करताहै और प्रकाशक होनेसे प्रकाशकका कार्य जो ज्ञान उसके साथ आत्माकूं बन्धन करताहै मैं सुखी मैं ज्ञानी ये मनके धर्महैं आत्मामें जोड़ देता है रजोगुण का कार्य और बन्धन प्रकार लिखते हैं:--रजोगुण रागात्मक अर्थात् रागहै आत्मा स्वरूप जिसका और तृष्णासंगकी उत्पत्ति है जिससे सो रजोगुण आत्माकूं कर्मोंमें संग आ० ॥

टी०—जो वस्तु प्राप्त नहीं उसमें अभिलाषारहनी तृष्णा; प्राप्त वस्तु में विशेष आसक्ति होनी संग ॥

मू०—शक्ति करके बन्धन करतारहे तमोगुण तमरूप है सब प्राणियों कूं मोह करनेवाला है सो तमोगुण प्रमाद निद्रा आलस्यादि करकेबन्धन करता है सत्त्व आदि अपने२आविर्भाव में जो करतेहैं जो उनकी शक्तिकूं दिखलाते हैं जिससमयरज तमो गुणकूं तिरोभाव करके सत्त्वगुण आविर्भाव होताहै सो सत्त्व दुःख शोकादिके कारणहुए सन्तेभी

सुखके अभिमुख करदेताहै रजोगुण सुखादिके कारणहुए सन्ते भी कामोंमें लगा देताहै तमोगुण शास्त्रजन्यज्ञानकूं ढककरके सुखादिके कारणहुए सन्तभी प्रमादादिमें जोड़ देताहै महत पुरुष पूर्व संस्कारसे मिले भी उन्होंने उपदेश भी किया उपदेश समय चित्त प्रमादमें लगारहा जिस हेतुसे वोही तमोगुणहै महात्माने जो कहा उस अर्थकूं न धारण किया जिसहेतुसे वोहि प्रमादहै यो नियमहै किजब सत्त्वका आविर्भाव होताहै तब रज तम तिरोभाव होजातेहैं जब रजोगुणका आविर्भाव होताहै तब सत्त्वतम तिरोभाव होजातेहैं जब तमोगुणका अविर्भाव होताहै तब सत्त्व रज तिरोभाव होजाते है जिस कालमें सत्त्वादि देहमें बड़ेरहतेहैं उनका स्वरूप लिखते हैं इस शरीरके सारे द्वारों में जिस समय प्रकाश होताहै और अन्तःकरणमें सुखका आविर्भाव होताहै इस चिह्न से जानना कि अब सत्त्वगुण बढ़ाहुआ है ऐसेही लोभ प्रवृत्ति कर्मोंका आरम्भ अंशमें स्पृहा ऐसे २ चिह्नकरके जाने कि अब रजोगुण बढ़रहाहै और प्रकाशअप्रवृत्तिप्रमादमोहादिके आविर्भाव में को जाने कि अब तमोगुण बढ़रहाहै अन्तकालमें जो सत्त्वगुणादि का आविर्भाव हो तो क्या २ फल होता है सोई लिखतेहैं जो अंत कालमें सत्त्वगुण बढ़ाहोवे तो यो देहधारी जीव इसदेह कूं त्यागकरके जो कि पुण्यलोकहै

जहां मल नहीं है सुख भोगनेके स्थानहैं उनकूं प्राप्तहोता-
है । और रजोगुणमें मरकरके कर्मसंगी मनुष्योंमें उत्पन्न
होताहै तमोगुणमें मरकरके पशु आदि मूढयोनिमेंउत्पन्न
होताहै जिसहेतुसे इस शरीरमें अपनेआप सत्त्वादि गुण
आविर्भावहोतेहैं उसका कारण कहते हैं निर्मल फल जो
ज्ञानसुख सो पिछले सत्त्वगुणी कर्मका फलहै रजोगुणी
कर्मका फल दुःखादि हैं तमोगुणी कर्मका फल अज्ञाना-
दिहैं सत्त्वगुणसे ज्ञानादि होतेहैं रजोगुणसे लोभादि होतेहैं
प्रमाद मोहादि तमोगुणसे होतेहैं सत्त्वगुणी आदि पुरुषोंकूं
देहके पीछे क्या फल होताहै प्रथम तो यो कहा था अन्त
कालमें जो गुण बढाहोवे उसका ऐसा फल होताहै यहां
तारतम्यताका विचार है जे सत्त्वगुणी हैं वे अपने गुण
की तारम्यतासे ऊपरके लोकोंकूं प्राप्त होंगे जैसे इसलोक
में ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्रादिकी और राजा मंत्री आदिकी
तारतम्यता है ऐसेही ऊपर भी देवता गन्धर्वादि ब्रह्मलोका-
दि लोकोंकी तारम्यता है जितनी यहां मनुष्य लोकमें
जिसके सत्त्वगुणकी वृत्ति सिवाय रहीहै वो उसी लेखेसे
ऊपरके लोकोंकूं प्राप्त होगा इसीप्रकार जो गुणी मनुष्य
लोकमें ब्राह्मण और चक्रवर्ती राजासे लगाकर चांडाल
कंगाल पर्यन्त उत्पन्न होवेगा और तमोगुणी पशु
आदि योनियोंमें अर्थात् कीट आदि सर्पा-
दिसे लेकर गोहंसादि पर्यन्त योनियोंमें उत्पन्न

होवेगा और जो ज्ञानीहैं वो गुणातीत हैं मुक्त होवेगा वो यों जानताहै कि मैं इन गुणोंसे पृथक्हूं गुणही कर्ताहै मैं अकर्ताहूं गुणोंका द्रष्टा साक्षीहूं परमेश्वर कहतेहैं गुणातीत मेरे भावकूं प्राप्त होवेगा तात्पर्य्य मुक्त होवेगा ॥ देवताकी पूजा करने और यज्ञ आदि दान तपादि करनेसे अन्नके खानेसे ऐसी ऐसी बहुत बातैंहैं सत्त्वादिकी परीक्षा होतीहै तात्पर्य जो सत्त्वगुणी देवताकी पूजा करे तो जानना कि यो सत्त्वगुणीहै ऐसेही रज तमोगुणीकी कल्पना करलेनी और ऐसेही यज्ञदानादिमें समझ लेनासत्त्वगुण पूजा दानादि करनेसे सत्त्वगुण बढ़ताहै इसलिये रजोगुणी तमोगुणी सम्बन्धी पूजादि त्याग देनेके लिये सत्त्वगुणी सम्बन्धी पूजादि सेवन करनेकेलियेपूजादिकूंसत्त्वरजतमो गुण भेद करके लिखते हैं॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, शक्ति गणेशादिके यजन करनेवाले सत्त्वगुणीहैं यक्षादिके यजन करनेवाले रजोगुणी हैं भूतप्रेतादिके यजन करनेवाले तमोगुणी हैं रजोगुणी तमोगुणी ऐसा ऐसा तप करतेहैं कि शास्त्रमें तो उसका विधान नहीं और प्राणियोंकूं भयका देनेवाला, घोर, शरीरकूं खेद करनेवाला, मूर्ख वृथा पाषण्ड करके ऐसा तप करतेहैं हेतु उसका योहै कि काम राग दम्भ अहंकारादि करके युक्त हैं जैसे कि नास्तिकादिके व्रतादि हैं इस समयमें बहुत प्रसिद्ध हैं लक्षण उनके श्रीतुलसीदासजीने रामायणमें लिखेहैं तात्पर्य जो

शास्त्रने नहीं विधान किया सो पाषण्ड है शास्त्रकी विधिसे करना तप आदि सत्त्वगुणी हैं भोजनका भेद कहते हैं:- रसवाला अन्न घृत शर्करा करके युक्त और भोजनके पीछेशरीरमें अपने रसकरके चिरकाल स्थिररहे और स्निग्ध कोमलतर और जिसके देखनेसे चित्तप्रसन्न हो जावे देखतेही मन अंगीकार कर लेवे ऐसा अन्न अवस्था उत्साह शक्ति आरोग्यका बढानेवाला सत्त्वगुणीकूं प्रिय है यज्ञमें ऐसा अन्न देना योग्य है १. अति कटु अम्ल लवण उष्ण तीक्ष्ण रूक्ष और दाह करनेवाला ऐसा अन्न दुःख शोकरोगका बढानेवाला है और भोजनके पीछे भी दुर्मन करनेवाला रजोगुणीकूं प्रिय है अति शब्द सबके साथ जोड़देना २ जिसकूं बने हुए पहर बीत जावें और गतरस ठंढा होजावे और जिसमें दुर्गन्ध आवे बासी जूंठा शास्त्र-करके निन्दित ऐसा अन्न तमोगुणी है ३. यज्ञका भेद कहतेहैं-फलकी इच्छा नहीं है जिन्होंके योही विचार करके कि यज्ञ करना वेदविहित है हमकूं करना योग्य है इस-प्रकार मनकूं समाधान करके जो यज्ञकरते हैं सो यज्ञ सत्त्वगुणी है १ फलका उद्देश करके दंभ करके जो यज्ञ करते हैं सो रजोगुणी है २. शास्त्र विधि करके हीन रजो-गुणी तमोगुणी अन्न है जिस यज्ञमें मंत्र दक्षिणा करके हीन श्रद्धा करके रहित जो यज्ञ सो तमोगुणी है ३. तपकूं आगे सत्त्वादि भेद करके लिखेंगे प्रथम तपकूं मन-

वाणी शरीर भेद करके लिखते हैं--देवता ब्राह्मण गुरु और कोई महात्मा उनका पूजन करना, कोमल रहना, हिंसा न करनी, पवित्र ब्रह्मचर्य रहना इसकूं शारीरक तप कहते हैं १. मैथुनके आठ अंग हैं सबसे बर्जित रहना इसका नाम ब्रह्मचर्य है रागबुद्धि करके स्त्रीका स्मरण करना १. कीर्तन करना २. हांसी चौहल करना ३. भले प्रकार दृष्टि जमाकर देखना ४, गुप्त एकान्तमें बात करनी ५, मनमें संकल्प करना कि यो कैसे प्राप्तहो ६, यो निश्चय करना कि हम इससे संग करेंगे ७, साक्षात् भ्रष्ट होजाना ८. राग पद सबके साथ जोड़ देना। ऐसा वचन बोलना दूसरेकूं उद्वेग न करे सत्यहो, उसकूं प्यारा लगे, परिणाममें सुखका करने वाला, थोड़े अक्षरोंमें कहना, वेद शास्त्रके पढने पढानेका अभ्यास रखना, इसकूं वाणीका तप कहते हैं २ मनकी प्रसन्नता अक्रूरता मनन करना मनकूं विषयोंसे निरोध करना व्यवहारमें माया न करनी इसकूं मानसतप कहते हैं ३. इस तीन प्रकारके तपकूं सात्त्विकादि भेदकरके तीन प्रकारका कहते हैं--एकाग्रचित्त करके फलकी इच्छा न करके परम श्रद्धा करके ऐसा जो तीनप्रकारका तप किया है इसकूं सात्त्विक कहते हैं १, जिन्होंने सत्कारके लिये किये साधु हैं मान और पूजाके लिये दंभ करके जो तप किया है सो अनित्य होनेसे रजोगुणी है २, विना विवेकके दुराग्रह करके आत्माकूं पीडा करके अथवा दूसरेके नाशके लिये जो तप करते हैं सो

तमोगुणी है ३, दानका भेद कहते हैं-हमकूं देना योग्यहै इस बुद्धि करके सुन्दर देश कालमें अनुपकारी सुपात्रोंकूं जो दान देना सो सत्त्वगुणी १, जो प्रत्युपकारी कूं वा फलका उद्देश करके वा चित्त में क्लेश करके दान देना सो रजोगुणी २, अपात्रोंकूं वा अदेश काल में देना और जो सुपात्रों कूं भी देना तो असत्कार अवज्ञा करके देना यो दान तमोगुणी है ३. कर्मकाभेद कहते हैं-फलकी इच्छा न करके यों विचार कर कि कर्मकरना वेदशास्त्र की आज्ञा है नित्य करना चाहिये राग द्वेषके विना अभिनिवेश न रखकर जो कर्म किया- है सो सत्त्वगुणी १, फलकी इच्छा करके अहंकार करके बहुत आयास करके जो कर्म किया सो रजोगुणी २, पश्चात् भावी धनादिका व्यय हिंसा अपना बल इनकूं नहीं बिचार करके केवल मोहसे जो कर्मका आरम्भ करना सो कर्म तमोगुणी है ३. कर्त्ताका भेद कहते हैं-त्यागदियाहै अभिनिवेश कर्ममें जिसने और गर्वकी जो बात बोलनी उससे रहित, धैर्य उत्साह वाला, कर्मकी सिद्धि असिद्धिमें निर्विकार ऐसा कर्मकर्त्ता सत्त्वगुणी १, रागी, फलकी इच्छावाला, लोभी, हिंसात्मक, अपवित्र, हर्ष शोक करके युक्त ऐसा कर्मकर्त्ता रजोगुणी २, प्राकृत, अनम्र, अवगुणकी शक्तिकूं छिपानेवाला, आलस्य स्वभाव वाला, शोकशील, दीर्घसूत्री अर्थात् घड़ीके काम कूं महीना लगावे ऐसा कर्मकर्त्ता तमोगुणीहैं ३. सुखका भेद

कहते हैं–तम रजोगुणी वृत्तियों का निरोध करके जो सत्त्वगुण बढता है कार्य उसका शांति संतोष निर्वैरता बेचाह कोमलताआदि है उस कालमें जो अंतःकरण में सुख होताहै सो सत्त्वगुणी है प्रथम अन्तःकरण निरोध के समय तो यो विषकी सदृश प्रतीत होताहै परन्तु थोड़े दिनोंतक पीछे तो सदा अमृतकी सदृशहै १. इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संबन्ध होनेसे अर्थात् खाने देखने मैथुनादिसे जो सुख होताहै सो रजोगुणीउस क्षणमें तो अमृतकी सदृश प्रतीत होता है पीछे तो बिषकी सदृश है २. निद्रा आलस्य मनोराज्यादिसे जो सुख होता है सो तमोगुणी वह इसलोक का न परलोक का केवल आत्माकूं मोहनेवालाहै तात्पर्य इसलोक स्वर्गादिमें वा देवताओं में ऐसा कोई नहीं एक एक शुद्ध प्रत्यंगात्मा के बिना कि जो इन गुणोंसे रहितहो त्याग ज्ञान बुद्धि धैर्य श्रद्धादि सत्त्वादि भेदसे गीताशास्त्रमें भले प्रकार लिखेहैं और जितना भेद ऊपर लिखा है उनकाभी अर्थ गीतादि के श्रवण से निश्चय होसकता है जितनी वेदशास्त्रोंकी आज्ञा है कि यो करना यो न करना सबका तात्पर्य यों है कि जिसके करनेसे रज तमोगुण बढ़तेहैं वह काम न करना और जिसके करनेसे सत्त्वगुण बढ़ता है वह काम करना बुद्धिमानको विचारना चाहिये कि प्रातःकालादि स्नान ध्यानादि करनेसे रज तमोगुण का नाश होता है वा नहीं जो जाने कि होता है तो सदा जैसे बने वैसेही

शास्त्र विहित कर्मोंको करना योग्यहै जिस कालमें रजतमोगुणकी वृत्तियोंका तिरस्कार और सत्त्वगुणकी वृत्तियोंका आविर्भाव भले प्रकार होजावेगा उस कालमें यो मेरेकूं करना योग्यहै यो अयोग्य है यो रास्ता बन्धदुःखादिका है यो रास्ता सुख मुक्तिका है सब जान जावेगा और बशिष्ट व्यासादि कूं जो यो समर्थ है सब भूत भविष्यत्कालकी व्यवस्था कहदेनी यों सत्त्वगुणका प्रताप है जिसके जितना सिवायसत्त्वगुण होगा उसके उतनाहीं सिवाय प्रकाश होगा तात्पर्य सत्त्वगुणके बढ़ानेसे सिद्ध स्वर्ग लक्ष्मी आदि भी प्राप्ति होनी बहुत सहजहै और सत्त्वगुणके बढ़नेसे ज्ञानद्वारा मुक्त होजाता है यों मुख्य फल है॥

इति श्रीआनन्दामृतवर्षिण्यांपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः।

प्रथम साधन अवस्थामें कर्म उपासना करनी योग्य है ज्ञानमें समुच्चय न करना अर्थात् कर्म उपासना ज्ञान तीनों मिलकर मुक्ति होतीहै ऐसा न विचारना श्रीशंकराचार्य महाराजने गीताभाष्यादि ग्रन्थोंमें सब समुच्चयका खण्डन भले प्रकार प्रमाणपूर्वक कियाहै तात्पर्य इस बातकूं सिद्ध कियाहै केवल ज्ञानसे मुक्ति होतीहै ज्ञानकूं

कर्मउपासनाकी इच्छा नहीं कर्म उपासना कूं ज्ञानकी इच्छा है तात्पर्य विना ज्ञान कर्मउपासनासे मुक्ति नहीं होती यहां भी इसी बात कूं सिद्ध करते हैं केवल ज्ञानसे मुक्ति होतीहै । शंका ।तप योगयज्ञ स्नान व्रतादिका फल मुक्ति सुना जाताहै उनकी क्या गति होगी।उत्तर । तप योगादि परम्परा करके मुक्तिके साधनहै ज्ञान तो साक्षात् स्वतंत्र मुक्तिका साधन है योही बात श्रीरामचन्द्रजीने भी लक्ष्मणजीके प्रति रामगीतामें कहीहै वे जो कर्म उपासनावाले केवल कर्मउपासनासे मुक्ति कहतेहैं उनसे बूझना योग्यहै कि वेदकी हजारों श्रुति अद्वैतपरहैं उनकी क्या गतिहै कर्मउपासनावाले जो बूझे कर्मउपासनापर जो हजारों श्रुतिहैं उनकी क्या गति है इस प्रश्नके उत्तरमें ब्रह्मवादी तो यों कहतेहैं कि कर्मकरनेसे अन्तष्करणशुद्ध होताहै उपासनासे चित्तकी एकाग्रता होतीहै यों उनका परम प्रयोजनहै फिर ज्ञानद्वारा मुक्ति होतीहै। तदुक्तम्॥ धर्मसे विरति योगसे ज्ञाना।ज्ञानसे मोक्षपद वेदबखाना ॥ यों शास्त्रार्थदिग्विजय शारीरकभाष्यादि ग्रन्थोंमें बहुत है जो बहुत चर्चा करे वह उन ग्रन्थोंका श्रवण करे यहां सिद्धांत लिखतेहैं केवल ज्ञान मुक्तिका साधनाहै उसमें यों दृष्टांत है जैसे पाकक्रियामें लकड़ीजलवर्तनादि परम्परा करके गौण साधनहै ऐसेही कर्मउपासना मुक्तिको गौण साधनहै ज्ञान तो साक्षात् मुक्तिका साधनहै जो ऐसी

शंका करे पाकक्रियामें अग्नि गौण रहो जल बर्तनादि मुख्य हैं दृष्टांतमें यों आया कर्म मुख्य है ज्ञान गौणहै। उत्तर उसका यों है अविद्या और कर्मका विरोध नहीं कर्मभी जड़ अविद्या भी जड़ है अन्धकारकूं अन्धकार नहीं दूर करसकता विद्या ज्ञानरूप है योंही ज्ञान अज्ञानकूं दूरकर सकता है जैसे प्रकाश अंधकारकू इस हेतुसे ज्ञान गौण नहीं होसका। तदुक्तम्॥ हुयेज्ञान वरु मिटे न मोहू। तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू। शंका। कर्मगौण रहो ज्ञान मुख्य रहे उपासना कहां गई। उत्तर। जो ऐसी उपासना है कि मैं ब्रह्म हूं अर्थात् अभेद उपासनाका तो ज्ञानमें अन्तर्भाव है और दासोऽहम् अर्थात् भेद उपासनाका कर्ममें अन्तर्भाव है इस प्रक्रियामें ज्ञान कर्म दोही हैं। शंका। आत्मा तो सब शरीरोंमें परिच्छिन्न प्रतीत होता है आत्माकूं पूर्णता कैसे है। उत्तर। परिच्छिन्नवत् आत्मा अज्ञानसे प्रतीत होता है अविद्याके नाश होनेसे आत्मा पूर्ण जैसा है वैसाही प्रतीत होने लगता है जैसे सूर्यके आगे बादल होनेसे वा मंदिर आदिकी उपाधिसे धूप परिच्छिन्न प्रतीत होती है बादल मकानकी उपाधि दूर होनेसे पूर्ण प्रकाश होजाता है जो आत्माजीव अज्ञानका जो कार्य देहादिमें अहंबुद्धि इस करके आपकूं कर्त्ता भोक्ता मानकर मैला होरहाहै ज्ञानके अभ्याससे निर्मल होजाता है। शंका। जो ज्ञान बना रहा तो अद्वैतकी असिद्धि है। उत्तर। ज्ञानके अभ्याससे प्रकट होता है जो

वृत्तिज्ञान सो अज्ञानकंनाश करकेऔर आत्माकूं निर्मल करके आपभी नाश होजाती है जैसे कतकरेणु जलके मलकूं दूर करके आपभी होजाती है शंका। आत्मा ज्ञान रूपहै वहां अज्ञान कैसे रहा। उत्तर।ज्ञान स्वरूप आत्मा अज्ञानका विरोधीनहीं धृत्ति ज्ञानका विरोधी है जैसे बांसमें अग्नि रहती है परंतु उसकी विरोधी नहीं मथन करनेसे उत्पन्न होती है जो अग्नि सो विरोधी है। शंका। यो संसार प्रत्यक्ष दीखता है इसकूं झूठा कैसे कहते हो। उत्तर। संसार स्वप्नकी तुल्य है जैसे स्वप्न अपने कालमें सत्यवत् प्रतीत होता है जाग्रतमें असत्यवत् प्रतीत होता है सत्य असत्यवत् प्रतीत होता है परमार्थमें दोनों प्रकार नहीं और जैसे देखने मैथुनादिसे जाग्रतमें दुःख सुख होता है वैसाही स्वप्नमें दुःख सुख होता है और जैसे स्वप्नके पदार्थ अनित्य हैं वैसेही जाग्रतके पदार्थ अनित्य हैं तात्पर्य भ्रान्तिकालमें जबतक जगत् सच्चा सा प्रतीत होता है कि जबतक अपना स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्मसे अभिन्न सबका अधिष्ठान नहीं जाना जैसे रजतकी जबतक भ्रमसे प्रतीत है तबतक शुक्तिके विशेष गुण नील पृष्ठ त्रिकोणादि नहीं निश्चय किये सत् चित् रूप आत्मामें सब प्रपञ्च कल्पित है जैसे सोनेमें झूमके बाली आदि कल्पित हैं और जैसे घटमकानादिकी उपाधिसे महाकाश पृथक् २ घटाकाश मठाकाश बनीवच्छिन्न वृक्षावच्छिन्न आकाश

कहा जाता है ऐसे ही आत्मा देहोंकी उपाधिसेपरिच्छिन्न कहाजाताहै और जैसे जब घटमकानादिका नाश होजावे तो केवल महाकाश रहजाता है ऐसे देह समूह अविद्याके नाशहुए आत्माभी पूर्ण रहजाता है सत्त्व तम रजोगुणी-की नानाउपाधिसे जाति वर्ण आश्रमादि आत्मामें कल्प रक्खेहैं जैसे जल, स्वभावसे मीठा श्वेतहै उपाधिसे खट्टे न-मके लाल पीलेकी उसमें कल्पना कीजातीहैं स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों उपाधियों से आत्मा पृथक् जानना चाहिये जैसे शुद्ध स्फटिक रक्त पीत रंगके योगसे वैसाही प्रतीत होता है जैसे धानों कूं मूसले से कूट पिछोड़ कर चावल पृथक् कर लेते हैं ऐसे पंचकोशरूपी भूसीकू दूरकरके वि-चाररूप जो पिछोड़ना इस युक्ति करके आत्माको पंच-कोश तीनशरीरसे पृथक् शुद्ध जानना चाहिये। शंका। तुम आत्माकूं सर्वगत कहतेहो सारे तो नहीं दीखता। उत्तर। आत्मा सब कालमें सर्वगत है परंतु शुद्ध बुद्धिकी वृत्तिमें प्रतीत होता है जैसे प्रतिबिम्ब सारे है परन्तु स्वच्छ पदार्थ दर्पण जलादिमें प्रतीत होता है देह इंद्रिय मन बुद्धि प्रकृति इनसे आत्मा विलक्षण है ये सब दृश्य हैं उनका जो द्रष्टा साक्षी सो आत्मा है। शंका। तुम आत्माकूं निर्विकार कहते हो आत्मा तो विकारवाला प्रतीत होता है क्योंकि मैं चलताहूं मैं बोलताहूं ऐसे २ व्यापारसे व्यापारी दीखताहै उत्तर। पृथक्२ जो इंद्रिय मन प्राणादि ये पृथक्२ अपने अपने विषयोंमें अपनी अपनी क्रियामें जो प्रवृत्त होते

हैं उनकेसाथ आत्माभी व्यापारीवत् विना विवेक मूर्खोंकूं प्रतीत होता है जैसे बादलके चलते हुए बालक कहता है कि चन्द्र चलता है बालकके तो योंही निश्चय है परंतु विचारवानकूँ भी भ्रान्तिसे चन्द्रका चलना प्रतीत होता है और जैसे नावमें बैठेहुए गंगाके तीरके वृक्षादि चलते हुए प्रतीत होते हैं ऐसे आत्मा भी व्यापारीवत् प्रतीत होता है देह इन्द्रिय प्राणमनआदि सब जड़ पदार्थ हैं आत्मा चैतन्यकूं आश्रय करके अपने अपने अर्थमें प्रवृत्त होतेहैं जैसे सूर्यके निकलनेसे मनुष्यादि अपने २ काममें लगते हैं देह इन्द्रिय गुण कर्मादि अमल सत् चित् आत्मामें विवेकके विना अभ्यास कर रक्खे हैं जैसे आकाशमें नीलता मनादिकी उपाधि अर्थात्मैं कर्त्ता भोक्ताहूं ये अज्ञानसे आत्मामें कल्प रक्खे हैं जैसे जलका चलनाचन्द्रमें कल्प रक्खा है राग इच्छा सुख दुःखादि बुद्धिके हुए हुए प्रतीत होते हैं सुषुप्तिमें बुद्धि लय होजाती है वहां नहीं प्रतीत होते इसलिये रागादि बुद्धिके धर्म हैं आत्माके नहीं जैसे सूर्यका स्वभाव प्रकाश, अग्निका उष्ण स्वभाव, जलका शीत स्वभाव है ऐसे नित्य निर्मल आत्माका सच्चिदानन्द स्वभाव है। सत् चित् आनंद ये तीन पद हैं। शास्त्रमें ये तीनों मिलकर एक सच्चिदानन्द ऐसा बोलनेमें आता है सत् जो तीनों काल भूत भविष्यत् वर्तमानमें प्रतीत होते हैं सुषुप्तिमें बुद्धि लय होजाती है वहां नहीं

एक रस बना रहता है भाषामें सत्कूं कहते हैं और घटपटादि में जो है यों शब्द प्रतीत होताहै सो आत्माही का अंश है यह बात दूसरे अध्याय में जहां अस्ति भाति प्रिय का प्रसंग है वहां भले प्रकार सिद्ध कर आये हैं और चित् चैतन्यरूप, ज्ञानरूप प्रकाशरूप परन्तु ऐसा प्रकाश न समझना जैसा अग्नि सूर्यादिका है क्योंकि ये तो स्वप्नसुषुप्ति में एक भी नहीं ऐसे समझो जिसके प्रकाश से जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति के पदार्थों का भान होता है अर्थात् जिस प्रकाश करके रूपादि मनादि सुख अज्ञानादि जाने जाते हैं जाग्रत अवस्था में भी आत्मा के प्रकाश के बिना कुछ नहीं प्रतीत होसकता परन्तुसूर्यादिकाभी प्रकाश है और स्वप्नसुषुप्ति में तो केवल आत्माहीका प्रकाश है इस हेतु से वहां भले प्रकार प्रतीत होताहै कि आत्मा का यों प्रकाश है आत्मा स्वयंप्रकाश स्वप्नमें भले प्रकार प्रतीत होसकता है और आनंदरूप जो कि सबसे सिवाय प्यारी वस्तु है उपनिषद् में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी का संवाद है—हे मैत्रेयी ! धन आत्मा के लिये प्यारा, पुत्र आत्माके लिये स्त्री आत्माके लिये तात्पर्य सब पदार्थ आत्माके लिये प्यारे हैं, जो सब पर विपत्ति पड़े तो प्रथम अपने शरीर की रक्षा करता है और ब्रह्मानन्दके लिये शरीर इन्द्रिय प्राण का भी नाश करदेता है इसी हेतुसे प्यारा आत्माहै वोही आत्मा आनन्दरूपहै वह आनन्द रूप रजतमोगुण की वृत्तियों में दब रहाहै।

इस आनन्दस्वरूप का पंचदशी ग्रंथ में ब्रह्मानन्द के६ अध्याय हैं योगानन्द, आत्मानन्द, अद्वैतानन्द, विद्यानन्द, विषयानन्द ये हैं नाम जिनके उनमें भले प्रकार निश्चय होसकता है। शंकाः—आत्मा तो निर्विकार है बुद्धि जडहै मैं जानता हूं यों किसका धर्म। उत्तरः—आत्मा का सत्‌चित् अंश और बुद्धि की वृत्ति ये दोनों जुड़कर विवेकके विना यों व्यवहार होता है कि मैं जानता हूं आत्माकूं जीव जानकर भय कूं प्राप्त होता है और जब यों जाने कि मैं जीव नहीं परमात्माहूं तब निर्भय होजाताहै जैसे जबतक रज्जुमें सर्पजानता रहेगा तबतक निश्चय भय रहेगा। वेद बारबार कहते हैं जो जीव ब्रह्ममें किंचित् भी भेद करेगा उसको बड़ा भय होगा बिचारो जो जीव ब्रह्ममें भेदहै तो पूर्णब्रह्म कैसे है जो एक से भेद हुआ तो अनेक जीव पशुपक्षी देवता यक्ष आकाशादि से सबसे भेद हुआ तो जैसे और है ऐसेही ब्रह्म भी एकादेशी हुये और रामचन्द्र, श्रीकृष्णचन्द्र विष्णु, शिवादि मूर्ति तो परमेश्वर की मायामयहैं वास्तव नहीं इस बातकूं परमेश्वरने अपने मुखसे कहा है। हे लक्ष्मी! यो मेरा शरीर मायामय है सात्त्विक नहींपद्मपुराण में गीताजी के माहात्म्यमें लक्ष्मीनारायणका सम्बादहै और गीताशास्त्र में परमेश्वर कहतेंहैं मुझ अव्यक्त कूं जो व्यक्तिवाला जानते हैं वे मूर्ख हैं। जब कि परमेश्वर आप ऐसा कहते हैं कि विवाद की

वातहै परन्तु मूर्ख अपनी मूर्खतासे सच्चिदानन्द एकरसपूर्ण ब्रह्मकूं परिच्छिन्न एकदेशी कहेंगे अर्थात् वैकुण्ठ, कैलास, मथुरा, अयोध्यावासी कहेंगे और परमेश्वरके सद्भावमें ऐसी ऐसी चर्चा करेंगे कि कृष्णचन्द्रने गोवर्द्धन उठा लिया इस हेतुसे कृष्णचन्द्र परमेश्वरहैं और जो श्रुति, स्मृति, युक्ति हजारों परमेश्वरकेसद्भावमें प्रमाण हैं किजिन युक्तियोंसे नास्तिकोंके मत खण्डन किये जातेहैं जो नास्तिक वेदकूं न परमेश्वरकूं न परमेश्वरके वाक्योंकूं मानताहै उसका मत केवल युक्ति करके खण्डन होताहै। मूर्ख उन युक्तियोंकूं तो जानते नहीं ऐसी तुच्छ युक्ति देतेहैं जिस कूं बालक भी खण्डन करदे गोवर्द्धनके सिवाय कैलास रावणने उठालियाहै और हजारों राजा पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं जिनके रथके पहियेके समुद्र बनेहुए हैं। क्या वे परमेश्वर थे और परमेश्वरने रावणमारा कंसमारा और अनेक जय करी यो परमेश्वरकी क्या स्तुतिहै अर्थात् निन्दाहै क्योंकि जो परमेश्वर करनेकूं न करने कूं औरका और करदेने कूं समर्थहैं क्या वे ऐसी ऐसी उपाधि करके नाना प्रकारका अपने ऊपर दुःख उठाकर औरोंसे सहाय ले ले जय करते तदुक्तम्—दोहा। प्रीति विरोध समान सन, करिय नीति अस आहि। जो मृगपति वध मेडुकन, भलो कहै को ताहि॥ चौ०॥ भवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥ सो महिमा समुझत प्रभु केरी।

जो बरणत हीनता घनेरी ॥ और प्रसिद्धहै कि चक्रवर्ती राजाकूं एक देशका राजा कहना षट्शास्त्रीकूं दो चार पोथीका पढ़ाहुआ कहना चार पुत्रवालेकूं एक पुत्रवाला कहना कितना अनर्थ है और जो यों कहो कि व्यासदेव वाल्मीकिजी आदिने क्यों परमेश्वरकी ऐसी ऐसी स्तुति लिखीहैं सो सुनो जो परमेश्वरकूं सच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म नित्यमुक्त एकरस असंग ऐसा विचारनेकूं समर्थ नहीं योंही जानताहै जैसे मैं उत्पन्न हुआ हूं मेरे माता पिता स्त्रियादि हैं ऐसेही परमेश्वर माता पिता स्त्रीवाले होंगे और जैसे इस लोकमें शरीर मकान उपवनादि सुन्दर सुन्दर जिसके होतेहैं और जो शत्रुओं कूं मार मार आप जयकूं प्राप्त होता है उसकूँ मूर्ख लोग बड़ा कहतेहैं इसलिये उन मूर्खोंके लिये व्यासादिजीने परमेश्वरकी ऐसी ऐसी स्तुति लिख दी और विचारवानोंके लिये वेदान्तमें जो स्वरूप परमात्माका निश्चय कियाहै उसकी स्तुति लिखी है विचार देखो यो कुछ विरोधकी बात नहीं जब मूर्ख भेदवादी वेदान्तकी ऐसी ऐसी युक्तियोंमें दब जाते हैं उत्तर नहीं देसकते तब यों बकने लगते हैं--अजी ज्ञान बड़ा कठिन है । कलियुगमें ज्ञान नहीं होता और जो ब्रह्मवादी ज्ञानी विशेष करके संन्यासी हैं उनकूं कहतेहैं कि कलि-युगमें संन्यासवर्जित है उनसे बूझना चाहिये श्रीमत्परम हंसपरिव्राजकाचार्य श्रीशंकराचार्य महाराज शिवजीका

अवतार पद्मपाद परमेश्वराचार्य्य हस्तामलक आनन्दगिरिजीसे आदि लेकर बहुत ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध हैं और बहुतसे इस समय में प्रत्यक्ष है और श्रीशंकराचार्य महाराजकूं भी कोई दोहजार वर्षबीते हैं जब कलियुग था वा नहीं और जो कलियुगमें शुचि ज्ञान नहीं होता तो व्यासजीने पुराणोंमें इतिहासोंमें भलेप्रकार सूत्रोंमें और श्रीकृष्णचन्द्र महाराज ने गीताशास्त्र में ज्ञान क्यों कहा और प्रथम अध्यायमें गीता भाष्यादि ग्रन्थों का नाम हम लिख आयेहैं वे ग्रन्थ उन्होंने क्यों बनाये और जो यों शंका करे कि हरिका नाम हीं ३ मेरा जीवन है और अन्यथा कलियुग मे नहीं ३ गति और जो केवल बोधके लिये प्रयत्न करते हैं वे केवल तुष कूटते हैं ऐसे २ वाक्यों की क्या गति । उत्तरः--ऐसे २ वाक्य कि कलियुग मे ज्ञान नहीं होता ये वाक्य जो किसी जगह नाम माहात्म्य की प्रशंसा वा भक्तिकी प्रशंसा वा कर्मादि की प्रशंसा में व्यासादिने जो कहेहैं क्यों कि व्यासादि कवियोंका यो नियम है जिस देवता वा भक्ति आदिकी प्रशंसा करतेहैं वहां योंहीं कहतेहैं कि जोहै योंही है तो वो कहना उनका मूर्खोंके लिये है और जो यो न मानेतो ऊपर जो हमने प्रश्न किये हैं कि, उन्होंने ज्ञान क्यों कहा उसका उत्तर दो तात्पर्य प्रथमहीं हम तीसरे अध्यायमें लिख आये हैं कि मूर्ख वेदशास्त्रके

एक २ देशकूं सुनकर वा अपने मतका हठ करके वृथा वाद करते हैं बुद्धिमानको वेद शास्त्रोंका सिद्धान्त निश्चय करना यो सिद्धान्त है। कोई महात्मा यह कहते हैं कि हम आधे श्लोक में वो बात कहेंगे जो कोटि ग्रन्थों-ने कही है सोई आधे श्लोक में कहते हैं 'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या है जो यो सच्चिदानन्द लक्षणवाला जीव-है सोई ब्रह्म है अपर कोई ब्रह्म नहीं योही ज्ञान मुक्तिका हेतु है॥

इति श्रीआनन्दाऽमृतवर्षिण्यां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

श्रीशंकराचार्य महाराजने हस्तामलकाचार्य्यसे प्रश्न किया कि तुम कौनहो इसका उत्तर श्रीहस्तामलकाचार्य कहते हैं मैं मनुष्य, देव, यक्ष ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, इनमें कोई नहीं निज बोधस्वरूप हूं फिर उन्होंने दृष्टान्त देदेकर कृपा करके जो औरोंकूंभी बोध होजावे इसी अर्थकूं सिद्ध किया हम भी उसी अर्थकूं संक्षेप करके इस अध्यायमें लिखेंगे औरभी दृष्टान्त युक्ति लिखेंगे जैसे मनुष्यादि का व्यवहारमें प्रवर्त्तहोना इसमें निमित्त सूर्य नारायण हैं ऐसे देह मन प्राण बुद्धि आदिकी प्रवृत्ति चेष्टामें जो निमित्त है और परमार्थत्व रूप करके तो कोई उपाधि द्रष्ट दृश्यादि जिसमें नहीं केवल आकाशवत् पूर्ण एकरस है

सो नित्य प्राप्त स्वरूप आत्माहै स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों पंचकोशोंसे पृथक् अवस्थाका साक्षी सच्चिदानन्दरूप जो है सो आत्माहै । शंका–जैसे और पदार्थ आकाश पृथिवीआदि इन्द्रिय मनबुद्धि आदि करके निश्चय किये जातेहैं ऐसे आत्मा तो नहीं जाना जाता । उत्तर–इन्द्रिय मन बुद्धि आदिकूं आत्मा प्रकाशताहै जैसे दीप घटादिकूं बुद्धिआदि जड़ पदार्थोंकरके आत्माका कैसे निश्चय होसकता है आत्मा तो स्वयंप्रकाश है आत्माकूं अपने जाननेमें इन्द्रिय मन बुद्धि आदिकी इच्छा नहीं जैसे दीपकके जाननेमें और दीपकी इच्छा नहीं चिदाभासके अर्थ जाननेके लिये प्रथम दृष्टान्त लिखतेहैं महाकाश १ घटाकाश २ घटमें जल ३ जलाकाश ४ ये चार दृष्टान्त हैं अब दृष्टान्तमें समझो शुद्धचैतन्य १ कूटस्थ २ अन्तःकरण ३ जीव ४ इसीका नाम चिदाभास है अर्थात् चैतन्यवत् प्रतीत हो परन्तु चैतन्यके लक्षण करके रहित हो जीवका जो अधिष्ठान अर्थात् जीव जिस में कल्पितहै और कूटवत् निर्विकार ठहरा रहे सो कूटस्थ जीवका लक्षण योंहै अधिष्ठान जो चैतन्य औरसूक्ष्म शरीर और चैतन्यकी जो छाया सूक्ष्मशरीरमें इन सबका संग जीव कहा जाताहै और महाकाश १ घटाकाश २ अभ्राकाश ३ जलाकाश ४ ये चार दृष्टान्तहैं अब दार्ष्टान्तिकमें समझो शुद्धचैतन्य १ कूटस्थ २ ईश्वर ३ जीव ४

और वोहीचैतन्य ऐसे ६ प्रकारकाहै शुद्धचैतन्य १ साक्षी २ प्रमातृ ३ प्रमाण ४ प्रमेय ५ फल ६ उपाधिरहित शुद्ध-चैतन्य १ अविद्योपहितसाक्षी २ अन्तःकरण विशिष्ट प्रमातृ ३ अन्तःकरणवृत्त्यवच्छिन्नप्रमाण ४ घटावच्छिन्न चैतन्य प्रमेय ५ अन्तःकरणवृत्त्यभिव्यक्त चैतन्य सो फल चैतन्य दृष्टांत इसमें तालाब गूलकेदारका है यों विषय भाषामें भले प्रकार नहीं लिखा जाता जो विस्तार करके लिखें भी तो इसका समझना कठिनहै और जो समझ सक्ताहै वो भाषा क्यों पढ़े सुन्दरशास्त्र पढ़े सुने प्रत्यक्ष प्रमाणमें और परमात्मा बुद्धि आदिका किस प्रकार ते विषयहै और किस प्रकार विषय नहीं इसबातके लिये जाननेमें इस विषयका जानना अवश्य चाहताहै इस लिये यों विषय वेदान्त शास्त्रार्थके जाननेवालोंसे श्रवण करना योग्यहै जो इस ग्रन्थकूं पढ़ावें सुनावेंगे वे अवश्य इस विषयकूं भी जानते होंगे हमने तो प्रसंग चिदाभासके अर्थ जाननेके लिये लिख दियाहै जैसे मुखका आभासका मुखका जनानेवाला जो दर्पणमें दीखताहैवो मुखसे कुछ पृथक् वस्तु नहीं ऐसे बुद्धिमें जो चिदाभासहै वो चैतन्य से पृथक् कुछ वस्तु नहीं उसका तो अधिष्ठान कूटस्थ रूप सो नित्य प्राप्त आत्मा है जैसे दर्पणके अभावमें आभासकी हानि हुए सन्ते एकमुख प्रतीत होताहै वहां कुछभी कल्पना आभास्य अभासक द्रष्टा दृश्य

बिम्ब प्रतिबिम्बकी नहीं होती ऐसे ज्ञानके नाश हुए संते कार्य उसका बुद्धि है बुद्धिका नाश हुए सन्ते जो निराभासक त्रिपुटीरहित वस्तु है सो आत्मा है ध्याता, ध्यान, ध्येयप्रमाता, प्रमाण, प्रमेय–ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, इसकूं त्रिपुटी कहते हैं मन इंद्रिय आदिसे पृथक् मन इंद्रिय आदिका आदि मन इंद्रिय आदि करके जो अगम्य सो आत्मा है सब जीवोंकी बुद्धिमें जो एक चैतन्य अपने आप शुद्धरूप ऐसे भानहोता है कि जैसे अनेक जलके घटोंमें एक सूर्य प्रतिबिम्ब करके भान होता है सो आत्माहै❀जैसे एक सूर्य अनेक नेत्रोंकूं क्रम करके नहीं प्रकाशता ऐसे आत्मा ज्ञानस्वरूप अनेककूं क्रम करके नहीं बोध करता। शंका–जो एक चैतन्य सब शरीरोंमें है तो यज्ञदत्तादिके दुःख सुख देवदत्त क्यों नहीं अनुभव करता। उत्तर–अविद्याकी उपाधिसे जिस शरीरमें जिस जगह विशेष अध्यास है यहींके दुःखादि अनुभव होसकते हैंऔर जगहके नहीं होसकते जैसे जिसकूं योंही निश्चय है कि इस शरीरमें चैतन्य और है यज्ञदत्तादिके शरीरोंमें और चैतन्य है तो उसकूंभी एक कालमें शरीर फूटनेका दुःख और पलँगपर सोनेका सुख और भी अनेक दुःख सुख अनुभव नहींहो सकते जिसकालमें जहां अन्तःकरणकी वृत्ति होगी उसीजगहका दुःख सुख प्रतीत होगा और जगहका नहीं होगा जो दूसरे शरीरमें अध्यास होगा तो संदेह यज्ञदत्तादिके दुःख सुख प्रतीत

होंगे जैसे मित्र पुत्रादिमें अध्यास होता है तो उनके दुःख सुखमें जो कहता है कि मैं दुःखी सुखीहूं और यों विचारना चाहिये कि जो प्रथम शरीरमें चैतन्य था वोही इस शरीरमें है फिर पूर्वजन्मके दुःख सुख क्यों नहीं प्रतीत होते तात्पर्य जब एक शरीरमें यों व्यवस्था है जो अन्तःकरणकी वृत्ति नेत्रके साथ लगीहुई है तो रूपहीका ज्ञान होता है समीप बैठे कुछ कहा करो किंचित् नहीं सुनता इसी प्रकार सब् जगह् कल्पना करलेनी हजार-वस्तु घरमें खाने पहरने देखनेकी रक्खीहों जिस जगह अन्तःकरणकी वृत्ति है वोही दुःख सुखकी हेतु है जब कि एक शरीरके दुःख सुख एक समय होनेवाले उनका एक कालमें अनुभव नहीं होसकता फिर अनेक शरीरोंका कैसे दुःख सुख अनुभव होसके। शंका—अष्टावधानी तो उत्तर देना चौसर खेलनी आदि ऐसे ऐसे ८ काम एक समय किया करता है और दूसरे जो एक बालिश्त चौड़ा लम्बा खजला है उसकूं दांतोंसे कुतर २ जो खाता है तो शब्द स्पर्श रूपरस गन्ध उसकूं एक कालमें प्रतीत होता है और तीसरे कोई कहता है कि मैं चन्द्र तारोंकूं एककालमें देखता हूं इसका उत्तर दो। उत्तर-मूर्ख यों बात कहता है मैं एक कालमें सबकूं अनुभव करता हूं उसकूं मनकी गतिकी खबर नहीं मन ऐसा चंचल है एक क्षण नहीं लगने पाता; प्रथमपदार्थकूं अनुभव करके दूसरे पदार्थमें प्रवृत्त होजाता है इस बातकूं सूक्ष्मदर्शी

जानते हैं और सुनो यो प्रसिद्ध है कि वाणी आदि इन्द्रिय विना अन्तःकरण विशिष्ट चैतन्यके युक्त हुए किसी क्रियामें प्रवृत्त नहीं होसकते देखिये पुरुष पाठ जप भी करता है और अनेक मनोराज्य भी करता है विचारना चाहिये उसके मुखसे श्लोक मंत्र जो उच्चारण होताहै तो चैतन्यविशिष्ट मनका वाणीके साथ संयोगहै वा नहीं जो कहो कि संयोग है तो मनोराज्य कौन करताहै और जो कहो कि संयोग नहीं तो बाणीजड़है उसमें क्रिया कैसे होतीहै तात्पर्य व सन्देह प्रतीत होताहै मनकी गति बहुत चंचल है मनमनोराज्य भी किये जाता है और वाणी के साथ मिलकर उस विषयकूं भी अनुभव किये जाता है मूर्ख योंहीं जानता है कि मेरा मन पाठजपमें नहीं लगा जिनकूँ अपने मनकी भी खबर नहीं उनसे ऐसी ऐसी शंका रहती हैं इस उत्तर में तीनों प्रश्नका उत्तर है॥

श्रीशंकाराचार्य भगवान् कहतेहैं कि यो जो जगत् दीखता है यो क्या है क्या इसका रूप है यो कैसे हुआहै इस का क्या हेतुहै यों बुद्धिमान को कभी नहीं चिन्तवन करना फिर क्या चिन्तवन करना चाहिये यो माया भ्रांति इन्द्रजाल है यों चिन्तवन करना चाहिये जैसे किसीके पैरमें कांटा लगजावे तो वो यो न विचारे कि मेरे यो कांटा कौनसे मुहूर्तमें लगाहै कौनसे पेड़का है यहां कैसे आया ऐसा २

चिन्तवन न करे जैसे बने उसके निकालनेका उपाय करे ऐसेही संसारकी निवृत्तिका उपाय करे जैसे एक सूर्य का प्रतिबिम्ब अनेक जलके घटों में है जो घटकूं लेकर चले तो सूर्य न तो उसके साथ जाताहै न कँपता है ऐसे आत्मा ज्ञानस्वरूप शरीर इन्द्रियादि की क्रियामें वो क्रियावाला नहीं जैसे ढक गई है बादल से दृष्टि जिसकी वो यो मानता है कि सूर्य छिप गये ऐसे अविद्याकी उपाधि से यों पुरुष आपकूं वृथा बँधाहुआ मानता है और जैसे किसी बन्दर ने घटमें हाथ डालकर दोनों हाथ में अन्न भरकर मूठी बन्द करली पीछे वृथा अज्ञान से चीची किल किल करे हैं विचारो उसकूं किसने बन्धन कियाहै और सुनो कोई तोतेके पकड़नेके लियेमैदानमेंतो चुगा डालदेता है और दो बांस खड़े करके बीच में उसके नलकी जैसीपंखे में होती लगा देताहै नीचे उस नलकीके किसी पात्रमें जलभर देताहै तोता चुग्गेके लालच आता है प्रथम नलकीपर आनकर बैठता है उस नलकी का नियम है उसके ऊपर जानवर बैठा और वो फिरी और जानवर उलटा हुआ जोवो जानवर छोड़कर भाग जावे तो कुशल है नहीं तो यों हालहोताहै किजब तोता उस नलकी पर आनकर बैठा और वो फिरी तोतेने जाना यो मेरा आश्रय है जो इसको छोडदिया तो जाने कहां गिरूंगा उसकूं वो पड़के रहा फिर उस तोते की नीचे कूं पीठ ऊपर कूं पैर

होगये उस तोते ने जो जलकी तरफकूं देखा तो अपना प्रतिबिम्ब जलमें प्रतीत हुआ उस तोतेका अध्यासन प्रतिबिम्बमें लगगया फिर वो तोता यो जानता है कि मैं जलमें डूब रहा हूं ऊपरका सबहाल भूलगया वृथा नसे चीची टींटीं करे है विचारो उसकूं किसने बंधन- किया है ऐसे यो कूटस्थ चैतन्यरूप अपने प्रतिबिम्ब चिदाभाससे अध्यास करके बंधनवत् होरहा है वास्तव बंध नहीं सब जगह जैसे आकाश अनुस्यूत है ऐसे आत्मा बाहर भीतर स्वच्छरूप अनुस्यूत है किसी वस्तुकूं स्पर्श नहीं करता और जैसे श्वेत मणि रंगकी सन्निधि होनेसे लाल पीली प्रतीत होतीहै ऐसे आत्मा अविद्याकी उपाधिसे करता भोक्ता प्रतीत होता है समस्त स्थूल सूक्ष्म उपाधिकूं नेतिनेति इस वाक्यसे निषेध करके जैसे दूसरे अध्यायमें जीव ब्रह्मकी एकता महावाक्य करके करी है सदा वोही चिन्तवन करना चाहिये प्रथ- मतत्त्व पदोंका अर्थ लिख भी आये हैं फिरभी और प्रकार करके सुनो कोई मुक्तिकी इच्छावाला तीनताप जो संसारमें हैं उन करके तपा हुआ और-

टी०-ज्वर क्रोधादि करके जो ताप सो आध्यात्मिक १, शत्रु चोर व्याघ्रादि करके जो ताप सो आधिभौतिक २, शीतोष्ण पवनादि करके जो ताप सो आधिदैवि ॥ ३ ॥

मू०-संसारसे उद्विग्न हुआ है मन जिसका शम दमादि साधनों करके युक्त सद्गुरुसे बूझता है-हे भग-

वन् ! जिस साधन करके अनायासपूर्वक संसाररूप बन्धनसे मैं छूटजाऊं सो महाराज मुझकूं संक्षेप करके केवल कृपा करके कहो। उत्तर—हे साधो ! तुमने बहुत अच्छा बूझा सावधानमति होकर सुनो, तत्त्वमसि महावाक्यादिसे उत्पन्न हुआ जो जीव ब्रह्मका तादात्म्यविषयज्ञान सो मुक्तिका कारण है। प्रश्न—महाराज कौन जीव कौन ब्रह्म है किस प्रकार करके उनकी तादात्म्यता है और महावाक्य किस प्रकार करके उसको प्रतिपादन करते हैं ?। उत्तर—जीव कौन है तूही जीवहै और जो बूझता है कि मैं कौन हूं तूही बेसन्देह ब्रह्म है। प्रश्न। हे भगवन् ! अबतक तो मैंने भलेप्रकार पदार्थ भी नहीं जाना मैं ब्रह्महूं यो जो महावाक्यार्थ इसकूं कैसे प्राप्त हूं। उत्तर—सत्य कहते हो वाक्यार्थके ज्ञानमें प्रथम पदार्थका ज्ञान हेतु है इसलिये प्रथम तत्त्वम् पदका अर्थ सुनो—अन्तःकरण और उसकी वृत्तियोंका जो साक्षीचैतन्यघन नित्य एकरस और देहादिहै अहंबुद्धि इसकूं त्यागकरके आत्मारूप करके जो चिन्तवन करनेमें आता है सो आत्मा त्वम् पदका अर्थ यो शरीररूपादिवाला होनेसे आत्मा नहीं जैसे पञ्चमहाभूतोंके विकार घटादि हैं ऐसेही प्रत्यक्ष विकारवाला होने से देह भी है। प्रश्न—जो देह अनात्मा है तो हे भगवन् ! आत्माकूं करामलकवत् साक्षात् प्रतिपादन करो । उत्तर—जैसे घटका देखनेवाला

घटसे पृथक् होता ऐसे देहका देखनेवाला देह कैसे होगा और जैसे मकानमें बैठा हुआ कोई यों कहै मैं मकान हूं तो विचारो कैसी मूर्खताकी बातहै ऐसे यो चैतन्यरूप असंग निरवयवहै और कहैं कि मैं देह हूं अर्थात् पुरुष स्त्री ब्राह्मणादि हूं विचारों इससे परे और क्या अज्ञान होगा देह तो उपलक्षण है प्राण इन्द्रिया मन बुद्धि आदि दृश्य होनेसे सब अनात्मा है सबका द्रष्टा सो आत्माहै देहसे परे इन्द्रिय इंद्रियोंसे परे मन मनसे परे बुद्धि बुद्धिसे परे जो बुद्धिका साक्षी सो आत्मा आत्मासे किंचित् नहीं और सब संघात भी आत्मा नहीं होसकता क्योंकि द्रष्टा दृश्य विलक्षण होतेहैं देह इन्द्रियकी जो चेष्टा क्रियामें सदा उपचय अपचयवाली हैं कभी किसी प्रकारका शरीर कभी किसी प्रकारकी इन्द्रिय मनादिकी चेष्टा देखनेमें आतीहै कभी किसी प्रकारकी जिसकी संनिधिमात्रसे ये सब चेष्टा करतेहैं एकरस जो इनका द्रष्टासो आत्माहै जड़ पदार्थ देहादि जिसकी संनिधिसे चैतन्यवत् प्रतीत होतेहैं जैसे चुम्बककी संनिधिसे लोहा सो आत्माहै मेरा मन इस समय कहीं गया अब मैंने स्थिर किया इस वृत्तिकूं जो जानताहै सो आत्माहै जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिका होना न होना इसकूं निर्विकार हुआ जो जानताहै सो आत्माहै जैसे घटका आभासक दीप घटसे पृथक्है ऐसे देहादिका आभासक देही पृथक्है देह स्त्री

पुत्र मकानादिके नष्ट होते २ तो आपकूं परमप्रेमका आस्पद प्रतीत होताहै सोई आत्माहै जैसे सूर्य पापपुण्य का साक्षी असंग निर्विकारहै इसीप्रकार साक्षी चैतन्यरूप निराकार आत्माहै और ये ६ विकार देहकेहैं जायते अस्ति, वर्द्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते विनश्यति, देह इन्द्रिय प्राण मन बुद्धि अज्ञानका लक्षी त्वम् पदका वाच्यार्थ है। अब तत्पदका अर्थ लिखते हैं--परिपूर्ण एकरस नित्यानन्द ज्ञानस्वरूप परमात्मा सर्वज्ञ परमेश्वर संपूर्णशक्तिवाला जिसकूं वेद ऐसा प्रतिपादन करतेहैं सो परमात्मा ब्रह्म हैजो प्रपंचका कारण अन्तर्यामी कर्मोंके फलका देनेवाला जगत्की सृष्टि स्थिति लय जिसके सकाशसे होतेहैं सोई तत्पदका वाच्यार्थ है और एक शुद्ध चैतन्य तत्त्वम् पदों का लक्ष्यार्थ है । तत्त्वम् पदोंकी एकता दूसरे अध्यायमें जैसे लिख आयेहैं वो प्रकार यहां चिंतवन करलेना । तात्पर्य जो तत्पदका लक्ष्यार्थहै सोई त्वम् पदका लक्ष्यार्थहै सो तूहै ऐसा कहो वा तू सोहै ऐसा कहो । इस प्रकार गुरुने शिष्यकूं बोधन किया और कहा कि मैं ब्रह्महूं यो वाक्यार्थ जबतक भलेप्रकार दृढ नहीं तबतक शम दमादि साधनोंकरके युक्त हुआ श्रवण मनन निदिध्यासनका अभ्यास नित्य प्रतिदिन करता रहे श्रवण ऐसे करे सुना जाताहै जिस समय कोई ऐसा रागगाताहै मृगके मुखमें जो तृण होताहै सो बाहरका बाहर और भीतरका भीतर

रहजाता है दृष्टान्त में आप समझ लेना दश उपनिषद् बृहदारण्यादि भाष्यसहित शारीरकभाष्य गीताभाष्य ये तीन प्रस्थान वेदान्तके कहलातेहैं उनकूंही ब्रह्मविद्या कहतेहैं आदित्यपुराण पंचदशी आदि ग्रन्थोंका उन्हींमें अन्तर्भाव है ऐसे २ ग्रन्थोंका ब्रह्मनिष्ठोंसे श्रवण करना जबतक संशय विपर्यय भलेप्रकार न जावे तबतक बारम्बार आदिसे अन्ततक इन ग्रन्थों का श्रवण करना इसीका नाम श्रवणहै । मनन ऐसे करना—जैसे पटवा रेशमकूं सुलझाताहै ऐसेही जो श्रवण किया उसकूं एकान्तमें बैठकर चिन्तवनकरे पूर्वपक्ष साधन फलादिकूं पृथक् करे युक्ति से सिद्धांत वस्तु को पुष्टकरे इसीका नाम मननहै निदिध्यासन ऐसे करना जैसे कोई बाजारमें बैठा हुआ अपना काम कर रहा था राजा की सवारी आगे कूं चलीगई कुछ न मालूम हुआ ऐसे जो मनन करके सिद्धान्त वस्तुका निश्चय किया है कि मैं देह प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि अज्ञान का साक्षी कूटस्थ हूं इसका सदा चिन्तावन करना इसकूं तो सजातीय प्रवाह करते हैं और जैसे प्रथम देहमें अध्यासन था कि मैं ब्राह्मणादि हूं इसका सदा चिंतवन न करना इसकूं विजातीय तिरस्कार कहते हैं इस प्रकार सजातीय प्रवाह और बिजातीय तिरस्कार सदा करते रहना इसी कूं निदिध्यासन कहते हैं। श्रवण से अज्ञान का नाश होताहै, मनन करनेसे संशय का नाश होता है, निदिध्यासन करनेसे विपर्ययका नाश होताहै, फिर

महावाक्यार्थं का ज्ञान भले प्रकार दृढ होजाता है सोई मुक्तिका हेतुहै ॥

इति श्रीआनन्दाऽमृतवर्षिण्यां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः ।

नित्य यह विचार करता रहे कि यो शरीर इन्द्रियादि अविद्या का कार्य है बुद्बुदवत् नाशवान् है मैं तो इन से विलक्षण एकरस हूं मैं देह नहीं इसहेतु से मेरे जन्मादि नहीं मैं इन्द्रिय नहीं इस हेतु से शब्दादि विषयों करके मेरा संग नहीं मैं मन नहीं इस हेतुसे दुःख सुखादि मेरे धर्म नहीं मैं प्राण नहीं इस हेतुसे भूंख प्यास मेरे धर्म नहीं मैं तो निर्गुण निष्क्रिय नित्य निर्विकल्प निरंजन निराकार निर्विकार नित्यमुक्त निर्मल आकाशवत् सारे व्यापक बाहर भीतर बेसंग अचल नित्यशुद्ध नित्यबुद्ध अखण्डआनंद अद्वय अक्षर अजर अमर हूं श्रीशंकराचार्य भगवान् कहते हैं इस प्रकार जो अभ्यास निरन्तर करता रहे कि मैं इसप्रकार ब्रह्महूं तो योअभ्यास अविद्या कार्यके सहित हरलेता है जैसे रोगकूं औषध अभ्यास करनेके साधन लिखते हैं ये साधन गीताशास्त्रमें लिखे हैं शुद्ध बुद्ध करके युक्त सत्त्वगुणी धैर्यसे उसी बुद्धि कूं निश्चय करके शब्दादिविषयों कूं त्यागकरके राग द्वेष कूं दूर करके विविक्त देशमें बैठकर सदा इस प्रकार भोजनका अभ्यास

करना योगशास्त्रमें लिखा है दो भाग तो अन्न करके पूर्ण करे और एक जल करके और एक भाग पवनके प्रचारके लिये खाली रक्खे देह वाणी मनकूं निग्रह करे अर्थात् अपनी इच्छापूर्वक अपने २ विषयमें प्रवृत्त न हो ध्यान योग जो निदिध्यासन इसीकूं मुख्य समझकर नित्य प्रतिदिन इस ध्यानयोगका अभ्यास करते रहना वैराग्यकूं आश्रय रखना अहंकार न करना कि मैं ऐसा विरक्तहूं काम क्रोध दुराग्रहकूं त्याग करके प्रारब्धके बलसे जो प्राप्त होजावे उसीमें सन्तोष करना जो पदार्थ पराई इच्छासे आजावे उनमें ममता छोड़ कर सदा निदिध्यासन करना योगके बलसे खोटे मार्गमें प्रवृत्त न होना अर्थात् किसीकूं शाप देना किसीपर अनुग्रह करना यो न करना परमेश्वर कहते हैं इस प्रकार अभ्यास करनेवाला, जो मेरा वास्तव तत्त्वस्वरूप है उसकूं प्राप्त होजाता है समस्त दृश्यकूं आत्मामें लयकरके जैसे प्रथम अपवाद लिख आये हैं एक आत्माकूं निर्मल आकाशवत् भावना करता रहै रूप वर्णादिकूं त्याग करके परमार्थका जाननेवाला परिपूर्ण चिदानन्दरूपकरके स्थित रहे इस प्रकार अभ्यास करते करते वृत्तिज्ञान उदय होकर अन्तःकरणके सहित समस्त अज्ञानकूं भस्मकर देता है जैसे मथन करते करते बांसमें अग्नि उत्पन्न होकर समस्त बनकूं भस्म कर देती है जैसे सूर्यके निकलनेसे प्रथम चांदना होजाता है ऐसे प्रथम मूलाज्ञानका

नाश होता है फिर थोड़े दिनोंके पीछे सब कार्य उसके स्थूल देहसे लगाकर अविद्या पर्यन्त नष्ट होजाते हैं आत्मा तो सदा प्राप्त है अविद्या करके अप्राप्तवत् प्रतीत होता है जैसे अपने गलेकी माला भूल जावे फिर किसीके बतलानेसे प्राप्तवत् प्रतीत होती है जैसे स्थाणुमें पुरुष शुक्तिमें रजत रज्जुमें सर्पकी भ्रान्ति ऐसे २ बहुत दृष्टान्त हैं उसी प्रकार ब्रह्मके विषय जीवता है जैसे दिक्का भ्रम सूर्यके उदय होनेसे दूरहोता है ऐसे यो वर्ण आश्रमादिकी भ्रान्ति अविद्याके नष्ट होने से आत्माके आविर्भाव होनेसे दूर होती है जैसे कारण स कार्य भिन्न नहीं ऐसे जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं कोई कीट भ्रमरका ध्यान करते करते भ्रमर होजाता है ऐसे जो जीव सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म सच्चिदानन्द ब्रह्मका ध्यान करते करते ब्रह्म होजावे तो इसमें क्या कहना है जैसे किसी घटमें १० छिद्रहों भीतर उसके दीप होवे उसी दीपकी प्रभा दश तरफकूं निकल कर परिच्छिन्न प्रतीत होती है ऐसे आत्मा दीपवत् शरीर घटवत् इंद्रिय छिद्रवत् हैं जैसे उस दीपकूं छिद्र द्वारा पवन लग २ प्रभा उसकी मंद रहता है ऐसे इन्द्रियद्वार विषय वासना रूपी पवन लगलग आत्माका सच्चिदानन्द रूप मंद सा प्रतीत होता है इंद्रियोंके रोकनेसे आत्मा सच्चिदानन्द साक्षात् प्रतीत होता है यावत् प्रारब्ध कर्म शेष है तावत् विद्वान् उपाधिमें स्थित हुआ प्रतीत होता है

परन्तु आकाशवत् लिपायमान नहीं होता ज्ञानवान् पंडित भीहै परंतु मूर्खवत् जानकर रहताहै किसी जगह वायुवत् आसक्त नहीं होता जब अविद्याका नाश होजाताहै तब निर्विशेष ब्रह्ममें लय होजाताहै इस लाभसे परे कोई और लाभ ब्रह्मलोकादिक नहीं इस सुखसे परे और कोई सुख चक्रवर्ती राजा इन्द्र ब्रह्मादिको नहीं इस ज्ञानसे परे कोई और ज्ञान भूत भविष्यत् आदिका नहीं इस प्रत्ययकूं रूप आत्माकूं देखकर मूर्त्तिमान् परमेश्वरके देखनेकी इच्छा नहीं रहती यो रूप होकर फिर मनुष्य देवतादि रूप नहीं होता यो जो आनंद रूपहै इस आनंदके एकलेशमें ब्रह्माजीसे लेकर चींटी पर्यन्त आनन्दीहै जिसकी आभा करके सूर्य चन्द्रादि भासते हैं सूर्य चन्द्रादिकी आभा करके जो नहीं प्रतीत होता सोई प्रत्यगात्मा ब्रह्म है यो रूप ज्ञानचक्षु करके दीखता है कर्मचक्षु करके नहीं दीखता जैसे अंधेकूं सूर्य ऊगा हुआ नहीं प्रतीत होता तात्पर्य यो रूप अधिकारीकूं प्रतीत होता है जैसे स्त्रीसंगका आनंद तरुण अवस्थामें आठ दश वर्षकी अवस्थामें लड़का लड़की जो उस आनंदकूं अनुभव किया चाहे तो क्या होसक्ताहै ? जिनके मैले अन्तःकरण हैं उनकूं इस रूपका साक्षात नहीं होसक्ता अन्तःकरण मैले होनेसे देवता गुरु वेदान्त शास्त्रमें श्रद्धाका अभाव होताहै श्रद्धाके विना गुरु कृपा नहीं करते गुरुकी

कृपाके विना कभी किसीकालमें ज्ञान न हुआ न होगाश्री- शंकराचार्य भगवान् कहतेहैं कि हजारों श्रुति अद्वैत ब्रह्मकूं प्रतिपादन करतीहैं और यो आत्मा सच्चिदानन्दरूप भले प्रकार निरन्तर प्रकाश वालाभी है परन्तु बिना गुरूकी कृपा मैले अन्तःकरणवाले साक्षात् करनेकूं समर्थ नहीं; इसलिये चाहिये प्रथम अन्तःकरणकी शुद्धिका उपाय करे क्योंकि श्रीभगवान्‌ने भी प्रथम अर्जुनकूं ज्ञान उपदेश किया फिर कहा हे अर्जुन ! हमने तुमकूं ज्ञान उपदेश किया जो तुमकूं यो ज्ञान अपरोक्ष न हुआ होतो अन्तःकर णकी शुद्धिके लिये निष्काम कर्मयोग सुनो जैसे सोना मैला होताहै उसकूं अग्निमें तायकर शुद्ध करलेतेहैं ऐसे अन्तःकरणकूं निष्काम कर्मयोग करके शुद्ध करना चा- हिये ज्ञानकी इच्छावालोंकूं प्रथम निष्काम कर्म्म मुख्य है शुद्धांतःकरणवालोंकूं समाधिसाधनमुख्यहैप्रश्न–शुद्धा- न्तःकरणवालेकी क्या परीक्षाहै। उत्तर–जब जाने यहांके जो देखे सुने स्त्री आदि पदार्थ हैं स्वर्गादिके अमृतादि पदार्थ जो सुनेहैं सबकूं चित्त न चाहै दुःखदायी जाने मुक्तिकी इच्छाहो तब निश्चय करे कि अन्तःकरण शुद्ध होगया फिर विवेक वैराग्यादि साधनों करके युक्त हो- कर यो विचार करे मैं कौनहू यो जगत् कैसे हुआ है इसका कर्ता कौनहै उपादान क्याहै इसीका नाम विचार है यो देहपंचभूतोंका विकार मैं नहीं इन्द्रिय मन

बुद्धि आदि मैं नहीं उनसे कोई विलक्षण हूं और जो किसीने प्रथम न्यायशास्त्र पूर्वमीमांसा वा पुराणादि पढ़े सुनेहों वेदांत शास्त्र न सुनाहो इस हेतुसे उसके बहुत संशय विपर्य्यय हों तो शारीरिक भाष्य पढ़े सुने वहां भले प्रकार युक्ति पूर्वक निश्चय हो सक्ता है भारत भागवतादिमें तो जिस जगह जो ज्ञान का प्रसंग है तबतो यों ही प्रतीत होताहै कि ज्ञान मुख्य है और जिस जगह कर्म उपासनादिका प्रसंगहै वहां कर्म आदि मुख्य प्रतीत होतेहैं वैष्णवादि अपने २ मतकूं मुख्य बताते हैं औरोंकी असूया करतेहैं भागवतादिमें स्पष्ट यो नहीं प्रतीत होता कि समस्त वेद भारत पुराणादिका कहां समन्वय है अर्थात् मुख्य प्रयोजन किसमेंहै शारीरिक भाष्यमें भले प्रकार श्रुति स्मृति युक्ति दृष्टांत देदेकर और अनेक दोष भेदवादि आदियोंके मतोंमें दिखाकर और जिसलिये कर्म उपासनादिका वेदोंमें प्रसंगहै उतने अंशकूं अंगीकार करके यो सिद्ध कियाहै कि समस्त वेद शास्त्र पुराणादिका ब्रह्ममें समन्वय है सब श्रुति स्मृत्ति प्रवृत्ति निवृत्ति मार्गकी कोई साक्षात् कोई परम्परा करके ब्रह्मकूं बोधन करतीहैं और जो यो विरुद्ध प्रतीत होता है कि कोई श्रुति कहती है ब्रह्म मनका विषय नहीं कोई कहती है ब्रह्म सूक्ष्म मनबुद्धि करकेजानाजाताहै कहीं ऐसा सुना जाता है जब वैराग्य होवे उसी समय संन्यास करे कहीं ऐसा सुनाजाताहै

माता पिता स्त्री आदिके त्यागमें दोषहै ऐसे २ विरुद्ध वाक्य अनेकहैं विचारनेसे विरुद्ध वास्तव नहीं क्योंकि जैसा अधिकारी देखा वैसाही उपदेश किया तात्पर्य्य सबका अविरुद्ध भले प्रकार शारीरिक भाष्यमें निश्चय हो सक्ता है और मुक्तिके साधन ऐसे ऐसे सुने जाते हैं कि अन्त मुक्तिका साधन है और तीर्थ श्रीगङ्गाजी से लेकर यावत् हैं उनमें स्नान करना बद्रीनारायणजीसे आदि लेकर दर्शन पाषाणादि मूर्तियोंका पूजन करना पाठ जप करना चतुर्भुजी आदिमूर्तियोंका ध्यान करना सगुण निर्गुण ब्रह्मकी उपासनासे लगाकर वेदान्तशास्त्रकाश्रवण मनन निदिध्यासन तक योंहीं सुना जाताहै ये सब मुक्तिके साधनहैं अर्थात् एक एकादशी के व्रत करनेसे मुक्तहो जाता है विष्णु चरणोदक पान करनेसे श्रीगङ्गाजी में स्नान करने से मुक्तहो जाता है तात्पर्य्य सबके माहात्म्यमें योंही प्रतीत होता है कि ये सब मुक्तिके साधन हैं अब यो विचारना चाहिये मुख्य साधन कौनहै जिससे निश्चय मुक्ति हो जावे और जो किसीके यो विश्वास है कि एकादशी आदि व्रत करनेसे बद्रीनारायणादिके दर्शन करनेसे श्री गंगाजी में स्नान करनेसे निश्चय मुक्त होजाताहै फिर तृप्ति क्यों नहींहोती तात्पर्य्य मुख्य साधन मुक्तिका वेदान्त शास्त्र का श्रवण मनन निदिध्यासन है और सब परम्परा करके गौण है इस बात कूं भी प्रमाणपूर्वक शारीरिक भाष्यमें

सिद्ध किया है और जो कि पूर्व मीमांसावाले स्वर्गादि की प्राप्तिकूं मुक्ति कहते हैं और कोई एकदेशी उनको कहते हैं कि नित्य सुखका प्रकट रहना मुक्ति है, सांख्य-शास्त्र वाले कहते हैं देह बुद्धि आदिमें अहंकारकी निवृत्ति हुए सन्ते औदासीन्य रहना मुक्ति है, पुराणवाले सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्यकूं मुक्ति कहते हैं, चार्वाक कहते हैं किसीके अधीन न होना मुक्ति है, न्यायशास्त्र-वाले कहते हैं २१ दुःखोंका अत्यन्त नाश होजाना मुक्ति है; २१ दुःख न्यायशास्त्रमें प्रसिद्ध हैं अत्यन्त नाश अत्यन्ताभावकूं कहते हैं। अभाव चार प्रकारका है— प्रागभाव जो घटसे प्रथम घटका अभाव, प्रध्वंसाभाव जो घटके नाश होजानेमें घटका अभाव, अन्योन्या-भाव जैसे घटमें घटका अभाव, अत्यन्ताभाव जैसे शशे के सींगोंका अभाव, और अनेक ब्रह्मलोक गोलोका-दिकी प्राप्तिकूं मुक्ति कहते हैं, गरुड़वाले जो कहते हैं सो तो लोकमें बहुत प्रसिद्ध है और भी अनेकमत हैं अब विचारना चाहिये मुक्तिका क्या अर्थ है इसका भी निश्चय शारीरिक भाष्यमें किया है कि अविद्योपहित जीव नामा शुद्ध चैतन्यका प्रतिबिम्ब मिथ्याभ्रांतिसे आपकूं जीव मानता है अविद्याकी उपाधिसे समस्त संसार मुक्तिपर्य्यन्त कल्प रक्खा है ब्रह्मज्ञानसे अवि-द्याका नाश हुए सन्ते जीव रूप भ्रांतिका दूर होना यो मुक्ति है। सर्व अनर्थोंकी निवृत्ति परमानन्दकी प्राप्ति

यो ही मुक्तिका लक्षण है । जैसे किसी घटगत जलमें जो प्रतिबिम्ब सो जलके दूर होनेसे नाश होजाता है फिर यों नहीं कहा जाता कि प्रतिबिम्ब कहांगया और प्रतिबिम्बके नाशहोने और न होनेमें सूर्य कुछ औ प्रकारके नहीं होजाते । दृष्टांतमें समझो कि शुद्ध चैतन्य जैसे प्रथम था वैसेही पीछे रहा जैसे स्वप्नके खुलते हुए स्वप्नमें जो पदार्थ कल्प रक्खे थे सब उसी-समय नाश हो जाते हैं ऐसे पीछे विदेह मुक्तिके समस्त संसार नाश होजाता है कोई ऐसा न विचार करे मैं तो मुक्त होजाऊँगा मेरे शत्रु मित्रादि और जगत् बना रहेगा उनके पीछेके लिये यत्न करना मूर्खता है स्वप्नके दृष्टां-तकूं भले प्रकार विचारना चाहिये वेदांत शास्त्रवालोंका जो कहना है वो तो अनुभवमें भी आता है श्रुति स्मृति आदि प्रमाण करके सिद्ध होसक्ता है और किसी शास्त्र पुराणादिका मत अनुभवमें नहीं आता वेदोंसे विरुद्ध स्पष्ट प्रतीत होता है विचारो जैसे जीवका देहपात हुआ यमपुरीकूं वा स्वर्गकूं वा पितृलोक वैकुंठादिकूं गया वा उसका जन्म उसी समय इसलोकमें होगया वा गरु-ड़वाले जो कहते हैं या उसीकी व्यवस्था हुई और यो बात कैसे अनुभवमें आवे कि सारी अवस्थामें तो मूर्ख-ताके काम करे अन्तकालमें काश्यादिमें मरनेसे नियम करके मुक्त हो जाता है जो ऐसे वाक्योंमें हठ

करतेहैं तो मुक्तिके लिये ज्ञानादिमें क्यों माथा मारतेहैं कहांतक लिखें हजारों ऐसी व्यवस्था हैं सब मतवाले अपने २ मतकूं युक्ति देदेकर सिद्ध करतेहैं परन्तु समस्त व्यवस्था कोई भले प्रकार नहीं कहते क्योंकि कोई स्वर्गकूं नित्य कोई अनित्य कहतेहैं । कोई 'काश्यां मरणान्मुक्तिः' । इस श्रुतिका अर्थ औरही प्रकार कहते हैं और यो भी भलेप्रकार नहीं प्रतीत होता कि स्वर्ग वैकुंठ कैलास ब्रह्मलोक गोलोकादिका कैसे भेदहै जैसे कि सातलोक भूर्भुवादिहैं उनमेंही उनका अन्तर्भावहै वा कुछ और प्रकार है अथवा जिसकूं ब्रह्मलोक कहतेहैं उसीकूं वैकुण्ठ पितृलोकादि कहतेहैं, जैसे यों स्थितिकी व्यवस्था है इससे सिवाय सृष्टिकी व्यवस्थाहै क्योंकि जब प्रत्यक्ष की व्यवस्था नहीं बैठ सकती परोक्षकी कौन बैठा सके यद्यपि यो व्यवस्था कहीं न कहीं लिखीहो परन्तु मेरे श्रवण करनेमें नहीं आई जो किसीने सुनीहो प्रमाणपूर्व्वक अनुभवमें आवे तो हमकूंभी योंही इष्टहै कि जैसे बने संशय दूरकरदेना चाहिये यथामति मैं कहता हूं किसी पक्षमें मेरी हठ नहीं यो जो व्यवस्था तो मुझकूं शास्त्रमें प्रतीत होतीहै और लोकमें यवनादि बहिश्तादि कहते हैं और इस बातमें तो किंचित्‌भी संदेह नहीं कि परमेश्वर सबका एकहै और योभी निश्चय होताहै यमनादि भी नरक स्वर्गादिके अधिकारी हैं यो नियम नहीं

कि सब नरकहीकूं जावें क्योंकि श्रीभगवान् कहतेहैं सत्त्वगुणी ऊपरके लोकोंकूं प्राप्त होवेगा शम दम संतोष दया कोमलता क्षमा दानादि सत्त्वगुणकी वृत्तिहैं उनमें दीखतीहैं इस हेतुसे निश्चय होता है सत्त्वगुणकी तारतम्यतासे स्वर्गादिके अधिकारीहैं तात्पर्य इन सबके मतोंसे मेरी जानमें अविरोध व्यवस्था नहीं बैठसकती परंतु वेदान्तशास्त्रके मतसे बैठसकतीहै सो सुनो वेदान्त शास्त्र-वाले ऐसा कहतेहैं कि यो जगत् अज्ञान करके कल्प रक्खा है स्वप्नवत् मिथ्याहै जैसे स्वप्नमें एक स्त्रीके साथ एक समय १० पुरुष संगकरें तो दशोंका सच्चाहै विचारनेसे झूंठा है तदुक्तम्॥चौपाई ॥ देखिय सुनिय गुणिय मन माहीं । मोहमूल परमारथ नाहीं ॥ अर्थात् जगत्का कारणमूल अज्ञान हीहै परमार्थमें नहीं जैसे एक रज्जु पड़ीहै कोई उसकूं सर्प कोई मूत्रधारा कोई दण्ड कहते हैं सबका कहना भ्रान्तिकालमें सच्चा परमार्थमें झूंठाहै ऐसे भ्रान्ति-कालमें एक ब्रह्ममें कल्पित स्वर्ग वैकुण्ठादि सब सच्चे परमार्थसे झूठेहै इस बातकी सिद्धिमें बहुत श्रुति स्मृति युक्ति दृष्टांत इतिहासादि प्रमाणहैं । वासिष्ठादि ग्रन्थोंमें अनेक इतिहासहैं वसिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीकूं अनेक इतिहास सुनाकर इसी बातकूं सिद्धकियाहै कई पुरुषोंने तप करके यो बर मांगा कि हम सब इसी कालमें ब्रह्मा होजावें वे सब ब्रह्मा होगये और ये ब्रह्माजीभी बने रहे और

उनके ब्रह्माण्ड सबके पृथक् २ हुए और एक ऋषिने तपकरके परमेश्वरसे वर मांगा हे परमेश्वर ! आपकी माया देखूं परमेश्वरने कहा जो दृश्य पदार्थहै सब माया है ऋषिकूं यों निश्चय रहा कि मायाशब्द करके कोई और पदार्थ है फिर परमेश्वर से प्रार्थना करी कि महाराज नहीं घटनेके योग्य यो पदार्थ उसके घटानेमें जो चतुर वो माया देखा चहता हूं महाराजने वर देदिया कि देखोगे एक दिन वे ऋषि हृषीकेश स्थानमें गंगाजीमें स्नान करते थे गंगाजीके तीर आसन पूजादि रखदिये ऋषिने जलमें जो डुबकी मारी सो वे ऋषि अपना ऋषिपना तो भूलगये किसी धीवरकी लड़की होगये काल पाकर उस लड़कीका विवाह होगया ४० वर्षकी अवस्थामें कई लड़के व लड़की उसके उत्पन्न हुए और अपने पतिके संगमें जो आनन्द और संग करके दुःख और संसारके अनेक ताप और बालकोंके खिलाने देखने में जो आनन्द और मलमूत्र धोनेमें जो दुःख सबकूं वे ऋषि स्त्री होकर अनुभव करते भये एकदिन वो स्त्री उसी जगह जहां ऋषिने डुबकी मारी थी जल भरनेके लिये गईघट कूं गंगाजीके तीरे रखकर गंगाजीमें स्नान करने लगी जब नीचे कूं डुबकी मारी तब तो वो स्त्री थी जब ऊपरको मुख उघाडा तब अपने शरीरकूं देखे तो ऋषिका शरीर होगया और गंगाजीके तीर घटभी रक्खा दीखता है आसन पूजाभी रक्खी

हुई दीखती है यो भी स्मरण होताहै मैं अमुक ऋषि हूं नित्य यहां स्नान करनेके लिये आता हूं और यो- भी स्मरण होताहै मैं अमुक पुरुषकी स्त्रीहूं यहां जल भरनेके लिये आई थी पहले घरकाभी व्यवहार स्मरण होताहै पिछले घरका भी व्यवहार स्मरण होताहै दोनों घरोंमें प्रीतिहै स्पष्ट यो निश्चय नहीं होसकता है कि मैं ऋषि वा स्त्री हूं उसकालमें उस स्त्री का पति अपने लडके कूं गोद लिये हुए उसी जगह आया ऋषिने देखा कि निश्चय योही मेरा पति है फिर भले प्रकार निश्चय होगया कि मैं गंगाजीमें स्नान करनेसे ऋषि होगया उस पुरुष ने ऋषिसे बूझा महाराज मेरी स्त्री यहां जल भरने आईथी घट उसका यो रक्खा- है वो कहां गई आपने भी उसकूं देखी है जो उसका वाक्य सुनकर और बालक लड़केकूं देखकर मोह होग- या ऋषि रोने लगा उस पुरुष ने प्रार्थना करके बूझा महाराज वो स्त्री गंगाजीमें डूबगई वा किसी सिंहादिने खालिया और तुम क्यों रोतेहो ऋषि कहते हैं वो स्त्री तो मैं हूं गंगाजीमें स्नान करने से ऋषि होगया इस बात- की सिद्धिके सिये समस्त व्यवस्था पिछले घरकी और लडके लडकियोंके नामादि कहदिये उस पुरुष कूं निश्च य होगया कि बेसंदेह यो मेरी स्त्री है ऋषि उस पुरुष से कहते हैं इस लड़के कूं भले प्रकार पालना यों करना वो करना उसने कहा कि तुम घरको चलो जो हुआ सो

हुआ बालकोंकूं खिलाते रहना और घरके काम करते रहना ऋषिजी उसके साथ हुए उसी समय वो परमेश्वरकी माया दूर होगई यो व्यवस्था कोई एक पलमें बीती जितनी देर जलमें डुबकी मारी जब ऋषिजीने ऊपरकू शिर उभारा देखते हैं वोही महीना वोही मुहूर्त्त न वो पुरुष न वो घट है ऋषिजीकूं निश्चय हुआ यो परमेश्वरकी माया देखी स्कन्दपुराणमें केदारखण्डमें यो कथा भलेप्रकार लिखी हुई है और वासिष्ठादि ग्रन्थोंमें ऐसी बहुत कथा हैं और बहुत प्राणियोंकू यो बात प्रत्यक्ष है कि स्वप्न तो घड़ी वा दो घड़ी रहा और राज्यादि १०० वर्ष किये भले प्रकार विचारो मायामें क्या नहीं बनसकता और यो जाग्रत् निश्चय स्वप्नकी बराबर है क्योंकि जाग्रत्के पदार्थ दुःख सुखके हेतुहैं और अनित्य हैं ऐसेही स्वप्नके पदार्थ हैं और जैसे जाग्रत्में स्वप्नका निश्चय किया करते हैं ऐसे स्वप्नमें भी स्वप्नका निश्चय किया करते हैं तात्पर्य्य यो जाग्रतमें जो प्रपंच दीखता है समस्त स्वप्नकी बराबर है माया है इससे सिवाय और क्या माया होगी कि गर्भमें ठहरकर वीर्य्य चेष्टा करने लगता है और बहनेवाला जो पदार्थ वीर्य्य है उसका कार्य कैसा कठिन होजाता है फिर उसी वीर्यमें देखो कैसे हाथ पैरादि बनजाते हैं फिर वोही ब्राह्मण साधु चोर जार कहाजाता है किसी कालमें तो वो लाड करनेके योग्य किसी कालमें भोग करनेके योग्य किसी कालमें

पूजन करनेके योग्य होता है किसी कालमें उसकूं देखकर प्राणी ग्लानि मानते हैं किसीकालमें उसके पुत्रादि चाहते हैं कि यो मरजावे तो सुन्दर है किसी कालमें उन शरीरके स्पर्श करनेसे पातक लगता है मकान वस्त्रादि अपवित्र होजाते हैं विचारो एक पदार्थमें कितनीकितनी अवस्था बीतती हैं जो एकरस पदार्थ नहीं; सबकूं एकप्रकारका न दीखे सोई माया है चित्ततो बहुत चाहता है कि ऐसी २ कथा लिखकर इस बातकूं करामलकवत् सिद्ध करदें परंतु ग्रंथका विस्तार होता है बुद्धिमान् एक दृष्टान्तमें विचारलें अब विचारों कि वेदांत शास्त्रका मत कैसा सुन्दर है परमेश्वरकूं तो परिपूर्ण नित्यमुक्त नित्यानंदादिरूप सिद्ध करना भक्ति ऐसी करनी अपना आप समस्त परमेश्वरमें झोक देना अपने अंशके न रखनेसे परमेश्वरकी पूर्णता सिद्ध होती है और सबके मतकूं अंगीकार करना सच्चा बताना यद्यपि स्वप्नके पदार्थ झूंठे हैं परंतु उस समयमें तो सच्चे हैं और सब मतवाले अपनेही मतकूं हठकरकेसिद्ध करते हैं औरोंकी असूया करते हैं पूर्वमीमांसावाले परमेश्वरकूं नहीं मानते जो भेदउपासनावाले परमेश्वरकूं मानतेभी हैं तो परिच्छिन्न मानते हैं जब जीव ब्रह्मका भेद कहां स्पष्ट प्रतीत होता है परमेश्वर परिच्छिन्न है और जो वे ऐसा कहैं कि परमेश्वरकी मायामें क्या नहीं बन सक्ता तो परमेश्वर उनकूं आनन्द रक्खे क्यों कि यो ही हमारा

सिद्धांतहै जब भेदवादियोंका अपने मतमें ठिकाना नहीं पाता तब मायाकूं अंगीकार करतेहैं मायाकूं अंगीकार किया और वेदांतके शास्त्रमें प्रवेश हुआ क्योंकि वेदांत के सिवाय और कोई प्रमाण नहीं वेदान्तकूं त्याग करके वृथा और अनात्म शास्त्रोंमें माथा मारतेहैं १८ विद्याहैं मुक्तिके लिये मुख्य वेदान्त शास्त्र है १४ विद्या तो येहै ऋग्, यजुष्, साम, अथर्वण ये चार वेद और ६ इनके अंग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, निरुक्त, मीमांसाशास्त्र, तर्कशास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र ये १४ विद्या हैं वेदान्तशास्त्रका मीमांसामें अन्तर्भाव है वैशेषिक शास्त्रका तर्कशास्त्रमें और सांख्य पातंजल पाशु-पत वैष्णव रामायण भारतादिका धर्मशास्त्रमें अन्तर्भावहै पुराण १८ हैं ब्राह्म पद्म स्कन्द मार्कण्डेय शैव वैष्णव गणेश और भागवत भविष्यत् ब्रह्मवैवर्त लिंग वामन वाराह कूर्म मत्स्य गरुड ब्रह्माण्ड और उपपुराण वा-शिष्ठ लिंग नारसिंह नन्दीय नारदीय वामनीय हंस तत्त्व सार दौर्वास्य शिवधर्म कापिल वामन वारुण रेणुक वाय-वीय कालीय महेश्वर पाराशर मारीच भार्गवादि भेदसे बहुत हैं मनु याज्ञवल्क्य विष्णु यम आंगिरस वशिष्ठ दक्ष संवर्त शातातप पाराशर गौतम शंखलखित हरित आपस्तंबी संस कात्यायन बात्स्यायन बृहस्पति देवल नारद पैठीनसी इनके और ओरोंके भी किये हुए

बहुत धर्मशास्त्र हैं कोई १८ विद्या कहते हैं आयुर्वेद धनुर्वेद गांधर्ववेद अर्थशास्त्र ये चार मिलकर १८ होजाती हैंकामशास्त्रका आयुर्वेदमें अन्तर्भाव है नीतिशास्त्र, शिल्पशास्त्र, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र, सूपकारशास्त्र, और ६४ कलाओंका अर्थशास्त्रमें अन्तर्भाव है इस प्रकार १८ विद्या हैं वेदांत शास्त्रका यो सिद्धांत है कि यो संसार स्वप्नवत्है निष्प्रपंच ब्रह्ममें भ्रान्ति करके नाना प्रकारकी कल्पना कर रक्खी हैं जैसे कोई बागड़भूमिमें दूरसे रेतीकूं देखकर कहैं कि यह नदी है कोई कहता है इसमें थोड़ा जल है कोई कमर जल कोई अगम्य जल कहता है तात्पर्य सबकी कल्पना झूठी हैं जो जगत् सच्चा होता तो बड़े बड़े बुद्धिमान मीमांसा सांख्य पातंजलि न्याय शास्त्रादिवालोंका सबका एक मत होता सबका मत पृथक् २ होनेसे स्पष्ट प्रतीत होताहै कि निष्प्रपंच ब्रह्ममें भ्रान्तिसे जगत् कल्पितहै इस बातकी सिद्धिमें बहुत श्रुति स्मृति आदि प्रमाण हैं और अनुभवमें भी आवेहै जैसी जैसी किसीकी बुद्धिहै वैसाही वैसा जगत्कूं कहतेहैं और ईश्वरकूं भी यथामति अंतर्यामीसे लगाकर कुलदेवता माता शीतला पीपल वृक्षादि जड़ पदार्थ तक कहते हैं सो कुछ थोड़ा थोड़ा मत उनका भी प्रसंगसे सुनो पूर्वमीमांसाशास्त्रवाले तो कहते हैं कि कर्म करनेसे मुक्तिहै स्वर्गादि प्राप्तिकूं मुक्ति कहते हैं

कर्म फलदाता है और कोई ईश्वर नहीं स्वर्गादि नित्य है उनकी उत्पत्ति प्रलय नहीं कोई एकदेशी उनके ईश्वर कूं भी मानते हैं। सांख्यशास्त्रवाले यह कहतेहैं-कि जैसे दूधका दधि परिणाम होजाताहै ऐसे प्रकृति जगत्‌रूप करके परिणाम होगई है और पुरुष जलगत पद्मपत्र वत् असंगहै तात्पर्य परिणामवाद सांख्यशास्त्रवालोंकाहै या आरंभ वाद शास्त्रवालोंका है न्यायशास्त्रवाले यों कहते हैं कि यो जगत् प्रलयके समय ईश्वरकी इच्छासे परिणामरूप होजाता है अर्थात् पृथ्वी जल तेज वायुके परिमाणु होजाते हैं और सृष्टिके समय ईश्वरकी इच्छासे परिमाणु मिलकर द्व्याणुक त्र्यणुक होकर फिर ऐसेही पृथ्वी आदि होजाते हैं और कहते हैं इस जगत् में सब सात पदार्थ हैं पृथ्वी जल तेज वायु आकाश काल दिक् आत्मा मन इन ९ पदार्थों कूं तो एकद्रव्य बोलतेहैं और रूप रस गन्ध स्पर्श संख्या परिमाण पृथक् संयोग विभाग परत्व अपरत्व गुरुत्व द्रवत्व स्नेह शब्द बुद्धि सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न धर्म अधर्म संस्कार. इन २४ पदार्थों कूं एका गुण बोलते हैं ये गुण द्रव्योंमें रहते हैं इसी प्रकार कर्म सामान्य विशेष समवाय अभाव ये पांच पदार्थ हैं और यावत् जगत् में पदार्थ हैं उनका इन्हीं सात पदार्थों में अन्तर्भाव है। जीव ईश्वर का भेद कहतेहैं जीव ईश्वर दोनों व्यापक

हैं पृथिवी आदि चार द्रव्य कूं परमाणु रूप करके नित्य कहते हैं आकाशादि पांच द्रव्य कूं सदा नित्य कहते हैं। व्याकरणवाले कहते हैं–शब्द ब्रह्म है सो नित्य है तात्पर्य वैयाकरण स्फोटवादी हैं। पुराणवालों-का मत प्रसिद्ध है कोई विष्णु कोई शिव शक्ति गणेश सूर्यकूं ईश्वर कहते हैं अपने २ मतके पृथक् पृथक् शास्त्र सात्वततंत्र नारदपंचरात्र कवलार्णवादि बनार-क्खे हैं। तात्पर्य पुराणवालोंका मत जैसा कि गरुड़वाले कहते हैं यो बहुत प्रसिद्धहै कहांतक लिखें बहुत मत हैं। सांख्य न्याय शास्त्रादिवालोंका मत उसी जगह निश्चय होसकता है यहां तो एक नाममात्र उनका मत दिखादि-या है और नास्तिक बौद्ध चार्वाकआदि के १८ मत तो मुख्यहैं और भी बहुत भेद हैं वे ईश्वर वेद-कूं नहीं मानते कोई शून्यवादी कोई कालवादी कोई स्वभाववादी कोई विज्ञानवादी हैं कोई कपालीमतके हैं नाना मत नास्तिकों के हैं और कठिनहैं पुराण वालोंके मतसे उनका बहुत बारीक मत है ऐसे ऐसे मत न्याय वेदान्तके पूर्वपक्षोंमें बहुतहैं लिख रक्खेहैं क्योंकि वेदान्त नैयायिक उनके मतकूं खण्डन कर सकते हैं। पुराणवालों से उनका मत खण्डन नहीं हो सकता उनकी युक्ति बहुत बारीक हैं और जो पाखण्ड अब कलियुगमें प्रसिद्ध है उनका लिखना योग्य नहीं।

तात्पर्य चार वर्ण चार आश्रम और अनुलोमज प्रतिलोमजादि जाति शास्त्र विहित हैं उनसे पृथक् जिसका वेद स्मृतियोंमें पता न लगे सब पाखण्ड मनुष्यों के रचेहुए हैं बुद्धिमान्‌को विचार लेना चाहिये अन्तर्यामी हिरण्यगर्भ विराटकूं वैदिकउपासनावाले ईश्वर कहते हैं । शिव विष्णु शक्ति सूर्य गणेशादिकूं पुराणवाले ईश्वर कहते हैं । भूम या भौपाल भूत पिशाच योगिनी श्रापा पीपल कुदालादि अनेक हैं उनकूं प्राकृत जीव ईश्वर कहते हैं । इसके पूजनेसे सृष्टि होती है इस हेतुसे वे ईश्वर कहते हैं वेदोंमें और लोकमें अन्तर्य्यामी सूत्रात्मादि भेद करके विष्णु शिवादि भेद करके राम कृष्णादि भेद करके राधावल्लभ गोपालादि भेद करके हनूमान भैरवादि भेदकरके पाषाण मृत्तिकादि भेद करके हजारों भेद ईश्वरके प्रतीत होते हैं अब बुद्धिमान् विचारें कौन सा ईश्वर सच्चा है कौनसा मत सच्चा है हम सत्य कहते हैं योहीं विचारो कि यह सब माया है विवर्तवाद आभासवाद अजातवाद वेदांतशास्त्रवालोंका है सोई सत्यहै और तत्त्वं पदोंका जो एक लक्ष्यार्थ सच्चिदानन्द रूप है सोई परमेश्वर है इसीकूं ज्ञान कहते हैं योही ज्ञान मुक्तिका हेतु है ॥

इति श्रीआनन्दामृतवर्षिण्यामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

मू० । देहादिके साथ तादात्म्य करके देहादिमें जो अहंबुद्धि इसीकूं अज्ञान कहते हैं यो विचारो कि आत्मा तो शुद्ध १ परिपूर्ण २ सत्य ३ चैतन्य ४ आनन्द ५ अखण्ड ६ अज ७ अमर ८ एकरस ९ और भी बहुत विशेषण हैं और अशुद्ध देह १ परिच्छिन्न २ असत्य ३ जड़ ४ दुःखरूप ५ एकदेशी ६ जन्मवाला ७ नाशवाला ८ नित्यएकरस नहीं रहता ९ आत्माकी और देह की जो एकता देखते हैं इससे परे और क्या अज्ञान होगा इस अज्ञानका कारण आसुरी सम्पत् है सोई दिखलाते हैं । दर्प अहंकार अपवित्र अभिमान् ईश्वरकूं न मानना क्रोध कठोरता मूर्खता धर्म्मकी प्रवृत्तिकूं न जानना अधर्म्मकी निवृत्तिकूं न जानना असत्य बोलना जगत्कूं अनीश्वर कहना बड़ी बड़ी कामना मनमें रखनी जो कभी पूर्ण न हो खोटे खोटे आग्रह करके सज्जनोंसे वैर करना गुणवानोंमें दोष निकालना बुद्धि तमोगुणी होनी अर्थात् हमने कथा कही थी उससे हमारी क्षति हुई शास्त्रवालोंकूं पाखण्डी कहना चिन्ता ऐसी ऐसी करनी जिनका प्रलयपर्यंत ठिकाना न लगे निश्चय यो रखना जो हम खा पहर जावेंगे स्त्रियोंके साथ आनन्द भोग जावेंगे यही मुख्य है देना नट बन्दरवालोंकूं कभी किसी साधु ब्राह्मणकूं

जो देता तो दम्भ अहंकार करके और उनका तिरस्कार करके हजारों आशारूपी फांसियोंमें बँधे रहना अन्याय करके रुपयादि संचय करना यो मुझकूं प्राप्त है जो प्राप्त करूंगा मेरी बराबर और कौनहै धन हमारे बहुत कुटु-म्ब हमारे बहुत ऐसे २ अवगुण आसुरी सम्पत्वालोंके कहे श्रीभगवान्‌ने फिर कहा—ऐसे पुरुषोंकी मुक्ति तो दूरहै मुक्तिका मार्ग भी उनकूं नहीं मिलेगा ये पुरुष जगत्‌के भ्रष्ट करनेवाले हैं ऐसोंकूं हम पशुकी योनियोंमें फेकेंगे वारम्वार सर्प विच्छू कीट सूकर कूकरादि योनि-योंमें जन्म लेते रहेंगे फिर कहा काम क्रोध लोभ ये तीन नरकके द्वारेहैं आत्माकूं मूढ योनियोंमें प्राप्त करनेवालेहैं उनकूं तो अवश्यही त्याग करना चाहिये प्रथम उनकूं त्याग करके जो पीछे मुक्तिमें प्रयत्न करेगा तब सिद्ध होगा अर्जुनने श्रीकृष्ण महाराजसे प्रश्न किया । महा-राज किस करके प्रेराहुआ यो पुरुष पापकूं करता है इच्छा नहीं भी करता परंतु ऐसा प्रतीत होताहै जैसा कोई बल करके पापमें जोड़ दे श्रीभगवान्‌ने कहा हे अर्जुन ! जो तुमने बूझा पाप करनेमें क्या हेतु है सो सुनो काम हेतुहै कामना होनेसे क्रोध होताहै रजोगुणसे इसकी उत्पत्ति है रजोगुणके जय करनेसे इसका भी जय हो-जाताहै अनन्तहै भोजन जिसका बड़ा पापी मोक्षमार्ग-का वैरी कामकूं जानो जैसे धूपने अग्निकूं मलने दर्पणकूं

जेरने गर्भकूं ढक रक्खा है ऐसे कामने विवेककूं ढक रक्खाहै प्राकृतियोंकूं तो यो काम भोगसमय मित्रसा प्रतीत होताहै ज्ञानीकूं तो भोगसमय भी दोषदृष्टि होनेसे वैरी दीखताहै कितनाही भोग भोगो कभी तृप्ति न हो और दूनी अग्नि लगे इसकी जयका उपाय यों है यो काम इन्द्रिय मन बुद्धिमें रहताहै क्योंकि विषयकूं देखा सुना संकल्प विकल्प किया निश्चय किया फिर कामका आविर्भाव होजाता है सो काम विवेककूं आवरण करके आत्माकूं मोहता है इसलिये यावत् इन्द्रियका विषय के साथ सम्बन्ध नहीं हुआ प्रथम मोहसे विषयमें दोष दृष्टि करके इन्द्रियोंकूं रोकना फिर इन्द्रिय नहीं रुक सकती देह इन्द्रिय मन बुद्धिसे परे जो आत्मा उसकूं आश्रय करके इस पापी कामकूं मारी जैसा यो परमेश्वरने अर्जुन कूं उपदेश किया ऐसाही किसी गुरुने शिष्यकूं उपदेश किया कि हे शिष्य! ये काम क्रोधादि प्रथम तो ज्ञानकी सिद्धिके लिये त्यागने योग्य हैं और ज्ञानहुए पीछे जीवन्मुक्तिके लिये त्यागने योग्यहैं। शिष्य कहता है महाराज जीवन्मुक्ति मुझकूं मतहो देहपातके पीछे तो मैं विदेहमुक्त होजाऊंगा गुरु कहतेहैं जो तुमने यहांके तुच्छ पदार्थोंके भोगनेके लिये जीवन्मुक्तिका अंगीकार नहीं किया तो निश्चय होताहै स्वर्गादि पदार्थोंके भोगनेके लिये विदेहमुक्तिका भी अंगीकार नहीं करोगे

हेतुसे प्रतीत होताहै तुम स्वर्गमात्रसे आपकूं कृतार्थ जानोगे फिर निश्चय आपका जन्म होवेगा जो कभी तुमने अपने मनमें यो मानाहो कि स्वर्ग क्षय अतिशय साहस्य पतन इन तीन दोषों करके त्यागना योग्य है॥

टी०—दिन दिन प्रति अपना कियाहुआ पुण्य कम होता रहताहै इसकूं तो क्षय दोष कहतेहैं और जैसे इस लोकमें चक्रवर्त्ती राजासे लगाकर कंगाल पर्यन्त तारतम्यताहै ऐसे स्वर्गमें विमान एश्वर्यादिकी तारतम्यता है अपनेसे अधिक विमान वालेकूं देखकर मनमें अतिशय रहते यो दूसरा दोष है और जब समस्त पुण्य नाश होताहै तब उसके गलेकी माला सूख जाती है वो तो अपने आप वहांसे नीचे गिरना नहीं चाहता परन्तु वहीं स्त्री जिनके साथ विहार करता था टांग पकड़ कर उलटा दिया करती हैं तीसरा यो साहस पतन दोषहै॥

मू०—विचारो कि इन तुच्छ पदार्थोंमें जो अनेक दोष करके युक्त हैं श्रीभगवान् भी कहतेहैं ये शब्द स्त्री आदि भोग निश्चय दुःख के कारण हैं उनके नाश अप्राप्तिमें जो दुःखहैं सो तो प्रसिद्धहैं परन्तु प्राप्ति कालमें भी स्पर्द्धा निन्दा भयादि दोषों करके युक्त दुःख रूप हैं फिर उनमें दोषदृष्टि करके क्यों नहीं त्यागते जब ये तुच्छ पदार्थ न त्यागे गये स्वर्गादि के पदार्थोंकूं कैसे त्यागोगे और यो तुम्हारा इच्छापूर्वक आचरण अनिष्ट है। इस बातमें श्री सुरेश्वराचार्यजीके वाक्य कूं प्रमाण देते हैं—जानाहै ब्रह्म-

तत्त्व जिसने उसका जो इच्छापूर्वक आचरण हुआ तो कूकर पशु आदि और ज्ञानियों में क्या भेद हुआ। जब धर्म कर्म शास्त्रकी आज्ञाकूं न मानकर इच्छापूर्वक आचरण किया फिर अशुचि भोजन में किसप्रकार दोष प्रतीत होगा। शिष्य कहताहै-महाराज मुझकूं इतनेही मात्रसे अनिष्ट सूचन किया गुरु उपहासपूर्वक कहतेहैं-ज्ञानसे प्रथम तो तुमकूं मनमात्रके दोषों करके क्लेश था अब समस्त लोगों की निन्दा सहनी अंगीकार करते हो आपके बोधकी क्या स्तुति होसके आपके बोधका जो वैभव है सो आश्चर्य है ऐसा बोध तो हमकूं भी नहीं हुआ यो बात लोकमें प्रसिद्धहै जो काले कम्बल पर और भी छींटस्याही की पड़ जावे तो कुछनहीं प्रतीत होती परन्तु श्वेत चादरपर जो एक छींट भी और रंग की पड़जावे वो भी दूरसे चमकतीहै ऐसे ज्ञानीका जो किञ्चित् भी अन्यथा आचरण प्रतीत हो तोभी मूर्ख उस बातकूं बढ़ाकर कुछ कुछ बकने लगतेहैं यो तो उसकूं विचारही नहीं किजो विधिनिषेध व्यवहारहै यो गुणों का कार्यहै द्रष्टा उनका असंग है और जो स्वसंवेद लक्षण ज्ञानीके हैं उनकूं मूर्ख क्या जानेंगे केवल जड़भरतादिके दृष्टान्त देदेकर निन्दा करेंगे और जो उनकूं कहा बोधहै कि ये तीनोंगुण सदा विदेह मुक्तसे प्रथम सबमें देवतासे लगाकर पशुपर्य्यन्त रहतेहैं किसीके थोड़े किसीके बहुत और यो सब देखना

सोना खाना पीना आदि अन्तःकरणका धर्म है अन्तः-करण मायाका कार्य होनेसे मिथ्या है कोई कोई तो ऐसा जानते हैं कि अन्तरंग साधन मुख्य है बहुत तो बहिरंग साधनोंकूं प्रमाण देदेकर निन्दा स्तुति करते हैं। शिष्य कहताहै-महाराज फिर क्या करना चाहिये। गुरु कहते हैं-करना क्या चाहिये यो करना चाहिये जो सूकर कूकरकी बराबरी है इसकूं वमनवत् त्यागदो तुम तो विचारवान् हो जितने अन्तःकरण गत दोष हैं सबका संग त्याग करके देवताकी बराबरी अंगीकार करो तुम इन मनुष्यों करके देवताके सम पूजनेके योग्यहो काम क्रोधादिमें जो जो दोष दुःख हैं सब मोक्ष-शास्त्रमें प्रसिद्ध हैं वहांसे तलाश करके दोषदृष्टि कर कर कामनादिका त्याग करके जीवन्मुक्ति सम्पादन करो शिष्य कहता है महाराज मैंने अंगीकार किया कामा-दिका तो त्याग करूंगा परंतु मनोराज्य करनेमें तो मेरी क्षति नहीं गुरु कहते हैं मनोराज्यकूं समस्त दोषोंका बीज होनेसे श्रीभगवान्ने क्षति कही है उस अर्थकूं घटाते हैं बैठे बैठे मनोराज्य हुआ अमुक पदार्थमें अर्थात् स्त्रिया-दिमें यो गुण है उस गुणको ध्यान करते करते उस पदा-र्थमें सूक्ष्म संयोग होगया संग होनेके पीछे फिर अधिक कामना होगई कामनारूपी जो अग्नि उसकी शान्तिके लिये किसीके पासगये कहा हमकूं यो वस्तु चाहती है उन्होंने न दी तब क्रोध उत्पन्न हुआ अब अपने दोषकूं

तो विचारते नहीं कि यो मेरे मनोराज्यने अनर्थ किया है उसमें दोष निकालते हैं कहते हैं देखो कैसे पापी अधर्मात्मा जीव हैं साधु ब्राह्मणकी आज्ञा नहीं करते क्या धन छातीपर धरके लेजावेंगे और अनेक कहने न कहनेके योग्य शब्दोंकूं कहते हैं और जो मनमें ताप होता है उसके तो आप साक्षी हैं फिर क्रोधसे सम्मोह अर्थात् कार्य अकार्यके विवेकका अभाव होगया फिर जो शास्त्र गुरुसे सुना सब भूल गये फिर चेतनारूपी बुद्धिका नाश होगया अर्थात् फिरभी होशियार होजावें तो बुद्धि न रही फिर अपने पुरुषार्थसे भ्रष्ट होगये विचारो मनोराज्यने कैसा अनर्थ किया जो मनोराज्य होकर मनमें कामना आई थी तो उसमें प्रवृत्त न होना था जो प्रवृत्त भी हुए थे तो उनके न देनेमें जो अपमान हुआ था उसकूं सहजान था उनकूं कुछ यद्वा तद्वा न कहना था जो उस समयइन्कार भी करदिया था अथवा दुर्वाक्य भी कहदिया था तो फिर सत्त्वगुणी वृत्तिमें काम आते जो कुछ वे दाता भी थे आगेकूं जो उनसे काम निकलता सो सब नष्ट होगया उनकूं तो क्रोधमें आकर यद्वा तद्वा कहबैठे फिर यो मुख न रहा कभी उनके समीपही जा बैठें और जो कभी उनके सत्त्वगुणी वृत्तिका विशेष उदयहो और बहुत दानकरें तो आपकूं कुछ नहीं मिलसकता सारी अवस्थाकूं तो उनसे मुरव्वत तोड़ बैठे और जिन्होंने सुना उन्होंने भी अपने आपसे

मन फेर लिया बारम्बार विचारो मनोराज्य बड़ा अनर्थ करताहै इसलिये मनोराज्यकाभी जय करो मनोराज्य-कामनाका जय करनेसे ज्ञानद्वारा मुक्त होजाता है ॥

इति श्रीआनन्दाऽमृतवर्षिण्यांनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः ।

प्रथम थोड़ेसे साधन जीवन्मुक्तिके लिये लिखभी आये हैं अब और भी सुनो जिनके अनुष्ठान करनेसे कामादि का जय होजाताहै साधककूं तो अभ्यास करनेसे सिद्ध होतेहैं सिद्धमें स्वभावसे रहते हैं जीवन्मुक्तिके ५ प्रयो· जन हैं प्रथम उनकूं लिखतेहैं—ज्ञानरक्षा १ तप २ विस्म-यादिका अभाव ३ दुःखोंकी निवृत्ति ४ सुखका आवि-र्भाव ५ अर्थ इनका यो है जीवन्मुक्तिके अभ्यास करने से संशय विपर्य्ययका उदय नहीं होता शुक राघव अस्मदादिवत् अकृत उपासक कूं कदाचित् संशयादि के उदय होनेके भयसे अवश्य जीवन्मुक्तिका अभ्यास करना योग्यहै । श्रीभगवान् कहते हैं—जिसके संशय है वो नाश होता है संशयादिका उदय न होना ज्ञानरक्षा १ चित्तकी एकग्रता तपहै सब धर्मोंसे श्रेष्ठहै ज्ञानीका तप लोकसंग्रहके अर्थ है। श्रीभगवान् कहतेहैं—श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है सोई सो और भी आच-रण करते हैं संग्रह भले तीन प्रकारके हैं—शिष्य १ भक्त

२ तटस्थ ३ शिष्य तो गुरुके शास्त्रविहित आचरणकूं देख देख अधिक अधिक श्रद्धा होकर फिर उनके वाक्य मेंविश्वास करके मुक्त होता है १ और भक्त उनकी पूजादि करके वांछित फलकूं प्राप्त होता है* विभूतिकी कामनावाला ज्ञानीका पूजन करे जिस जिस लोककी मनसे भावना करेगा और जो जो कामना चाहेगा उसी उस लोक और उसी उस कामनाकूं प्राप्त होगा यो श्रुति का अर्थहै स्मृतिका भी अर्थ सुनो जो एक ब्रह्मका जान-नेवाला भोजन करे तो समस्त जगत् तृप्त होताहै इस लिये जो कुछ देवे योग्य है सो ब्रह्मवित्कूं देना चाहिये तटस्थ दो प्रकारका है सन्मार्गी १ असन्मार्गी २ स-न्मार्गी तो ज्ञानीके आचरणकूं देख देख अपने आप सदा-चार करके मुक्त होगा, असन्मार्गी जीवन्मुक्तिकी दृष्टि करके सारे पापोंसे मुक्त होगा यहां स्मृति प्रमाणहै जि-सकी अनुभवपर्यंत बुद्धितत्त्वके विषय प्रवर्तहैं उसकी दृष्टिगोचर जो होगा अर्थात् कृपादृष्टिसे जिसकूं वे देखेंगे वो सारे पापोंसे छूटजावेगा जो ज्ञानीकूं वाणी आदि कर-के दुःख देंगेमन करके द्वेष करेंगे वे ज्ञानीके पापकूं ग्रहण करेंगे यहां श्रुति प्रमाणहै सुहृद ज्ञानीके पुण्य द्वेषी ज्ञानीके पापकूं ग्रहण करेंगे यो श्रुतिका अर्थ है २ जिस समय ज्ञानीकी बहिर्मुख वृत्तिहो उस समय उसकूं कोई

दुर्वाक्य बोले उसकूं सुनकर अथवा वृथा कोई मार भी दे चित्तकी वृत्तिमें रागद्वेष उदय न होना इसका नाम विसम्वाद का अभाव है ३ संसारके व्यवहार में धनके सञ्चयादि में अनेक प्रकारके दुःख और मुक्तके लिये श्रवणादि में अनेक दुःख हैं जीवन्मुक्तके सब दुःख नाश होजाते हैं यदि आत्माकूं जानता है कि मैं यो हूं फिर किसकी इच्छा करता हुआ और किस कामनाके लिये शरीरकूं दुःख दे यों श्रुतिका अर्थ है ४ समाधि करके दूर कर दियेहैं चित्तके मल जिन्होंने और आत्मामें प्रवेश किया है चित्त जिन्होंने उनकूं जो सुख होताहै उसकूं वाणी नहीं कह सकती अपने अनुभव करके जाना जाताहै यो श्रुतिका अर्थ है जैसे कोई १६ वर्षकी स्त्रीसे १०–११ वर्षकी लड़की बूझे कि तू सुसरालमें गई थी तुझकूं पतिके संगमें क्या आनन्द हुआ जैसे वो उस आनन्दकूं अनुभव करती हुई उनकूं कम समझ जान कर हँसकर चुप होजाती है ऐसे ज्ञानी ब्रह्मानन्दकूं अनुभव करते हुए औरोंको कम समझ जानकर मौन रहते हैं यो सुखाविर्भाव पांचवां प्रयोजन जीवन्मुक्ति का ५। जीवन्मुक्तिके लिये जो अष्टांग योग कहते हैं उनकूं भी थोड़ा सा सुनो–योगके ८ अंगहैं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, अर्थ-इनका पातंजलशास्त्र में भलेप्रकार निश्चय होसकता है यहां इसलिये नहीं लिखा कि इस योग

करनेकी सम्प्रदाय लोप होरही है विना गुरु वो योग सिद्ध नहीं होसकता जिसकूं यो योग करनाहो और कोई गुरु मिले तो वहांसे उनका अर्थ निश्चय करे परन्तु और प्रकार भी उसका अर्थ करतेहैं परिपक्क है चित्त जिनका वे इनका ऐसा अर्थ निश्चय करें. देहादिमें विरक्ति यम १ स्वात्मतत्त्वमें अनुरक्ति नियम२जैसे बैठे चलते लेटे सुखपूर्वक निरन्तर ब्रह्मका चिन्तवन होता रहै वही आसन है सुख पद्मादि आसन मन्दके लिये हैं ३ प्राणके चलते हुए अपने आप सदा यो जप होता रहै सोऽहम् सोऽहम् सोऽहम् इनका जो अर्थ उसमें चित्तकूं स्थिर करना अर्थात् योही निश्चय रखना कि मैं ब्रह्महूं ४ श्रोत्रादि इन्द्रियोंकूं शब्दादि विषयोंसे रोकना प्रत्याहार ५ बुद्धिकं विषयोंसे विमुख करना धारणा ६ जहां जहां दृष्टि जावे वहीं वहीं ब्रह्म देखना दृष्टिकूं ब्रह्ममयी करके सब जगत्कूं ब्रह्ममय देखना सो दृष्टि श्रेष्ठ है अथवा द्रष्टा दर्शन दृश्य इनका जहां विराम हो वहीं दृष्टि करनी नासाग्रदृष्टि बालकोंके लिये है ७ मैं असंग सच्चिदानन्द परिपूर्ण निरवयव एकरस हूं इस प्रकार चित्तका समाधान करना समाधि सो दो प्रकारकी है सविकल्प १ निर्विकल्प २ त्रिपुटी सहित सविकल्प १ त्रिपुटी रहितं निर्विकल्प २ निर्विकल्प समाधि करनेके समय चार विघ्न होते हैं लय १ निद्रा आजानी विक्षेप २ बारम्बार विषयों का अनुसन्धान होना कषाय ३ चित्त

का रागादिसे तो हट आना परंतु स्वरूपमें न पहुँचना बीचकी वृत्तिका नाम कषाय है इसीकूं स्तब्धीभाव कहते है रसास्वाद ४ समाधिके आरम्भसमय सविकल्पका आनंन्द होना कि मैं ऐसा आनन्दरूप परिपूर्णहूं यो चिन्तवन होना इसकूं रसास्वाद कहते हैं प्राणायाम आसन विषयोंमें दोष दृष्ट्यादि करके लय विक्षेपादिका जय करना चाहिये वसिष्ठजी कहते हैं चित्तनाश करनेके दो मार्ग हैं ज्ञान १ योग २ ये दोनों मार्ग भगवान्‌नेभी गीताशास्त्रमें कहे हैं देहादिसे परे आत्माकूं जानना अर्थात् असंग नित्य मुक्त अपनेकूं निश्चय करना यो ज्ञान है और चित्तकी वृत्तिका निरोध करना इसका नाम योग है चित्तवृत्तिनिरोधका प्रकार चार प्रकारसे वशिष्ठ जीने कहा है सदा वेदान्त शास्त्रकूं पढ़ना सुनना विचारना १ जो ब्रह्मनिष्ठ साधु हैं उनका संग करना २ समस्त बासनाका त्याग करना ३ अष्टांगयोग करना४ प्रथम साधन उत्तम अधिकारीके लिये हैं जो वहां चित्तका निरोध न हो तो ये तीन उत्तरोत्तर हैं ❋ और जो चित्तके निरोधका प्रकार आत्मा संयम योग नाम करके श्रीभगवान्‌ने गीताशास्त्रमें कहा है उसकाभी अर्थ संक्षेप करके लिखते हैं—योगी मनकूं समाहित कर अकेला एकान्तमें बैठकर भले प्रकार जीते हैं वश किये हैं मन इन्द्रियादि जिसने निराकांक्ष होकर शरीरयात्रासें सिवाय भोजन वस्त्रादि सामग्रीकूं त्याग करके पवित्र-

देशमें शुद्धभूमिमें अपना आसन बिछाकर वो आसन बहुत नीचा ऊंचा न हो नीचे कुशाका आसन जापर उसके मृग चर्मादि फिर ऊपर वस्त्र बिछाकर मनकूं एकाग्र करके वशकरी है चित्त इन्द्रियोंकी क्रिया जिसने सो उसपर बैठकरचित्तकी शांतिके लिये अभ्यास करे चित्तके एकाग्र करनेमें देहकी धारणा भी उपयोगी है उसका धारण प्रकार लिखते हैं–देहका जो मध्यभाग है उसकूं शिर और ग्रीवाकूं सम निश्चय करके नासाग्र दृष्टि होकर पूर्वादिकूं नहीं देखता हुआ दूर होगया है भय जिसका सो ब्रह्मचारी व्रतमें स्थित होकर आत्मामें है चित्त जिसका आत्माही है परम पुरुषार्थ जिसके इस प्रकार युक्त होकर बैठे । श्रीभगवान् कहते हैं–जो इस प्रकार सदा मनकूं समाहित करता हुआ निरोध हुआ है अन्तःकरण जिसका सो पराशान्तिकूं प्राप्त होता है बहुत खानेवाले थोडे खानेवाले कूं भी बहुत सोनेवाले बहुत जागनेवालेकूं भी योग सिद्ध नहीं होता तात्पर्य्य शास्त्रविहित सोना जागना बोलना चलाना भोजनादि क्रिया जो नियम करके करेगा उसकूं दुःखोंका नाश करनेवाला यो योग सिद्ध होता है। किस कालमें योग सिद्ध होता है इस अपेक्षामें कहते हैं–जिस कालमें वश किया हुआ चित्त आत्माही में निश्चय ठहरता है सब कामना जो इसलोक की परलोक की हैं उनकी

इच्छा नहीं करता उस कालमें जानो कि योग सिद्ध हुआ जैसे दीवा बन्द मकानमें एकरस प्रकाशता है हलता नहीं ऐसे जीताहै चित्त जिसने उसका चित्त प्रकाशता और निष्कंपता करके ठहरता है योग करके निरुद्ध हुआ चित्त जिस अवस्थामें संसारके विषयोंसे उपराम हो और जिस अवस्थामें शुद्ध मन करके आत्माहीको देखे आत्माहीमें तोष करे उस अवस्थामें निरतिशय सुखकूं अनुभव करताहै फिर उस अवस्थामें स्थित हुआ तत्त्वसे नहीं चलता उस सुखकूं लाभ करके अपर जो ब्रह्म लोकादिके सुख उनकूं अधिक नहीं जानता उस अवस्थामें स्थित हुआ बड़े भारी दुःख करके भी नहीं विचलता दुःखका प्रथम किंचित् संयोगमात्र करके समस्त दुःख और विषय सम्बन्धी दुःखोंका वियोगहै जिसमें उसीकूं योग जानना सो योग आचार्य शास्त्रको निश्चय करके अवश्य अभ्यास करना चाहिये दुःख बुद्धि करके प्रयत्नकी जो शिथिलता उसकूं त्यागना चाहिये टिट्टीके पुरुषार्थकूं स्मरण करना योग्यहै जैसे कि वो यो संकल्प रखता है कि मैं कुशके अग्रभागमें जितना जल ठहरताहै कुशासे इतनाही जल उठाकर समुद्रकूं सुखाऊंगा ऐसाही चित्तके निरोध करनेका संकल्प रक्खे संकल्पसे आविर्भावहै जिनका ऐसे योगकी प्रतिकूल जो कामना उनकूं सबकूं त्याग करके और मन करके सब तरफसे इन्द्रिय ग्रामकूं

रोककर धैर्यकरके शनैः शनैः अभ्यासक्रमसे करके उप-
राम हो सहसा एकबारही जो पूर्वावस्थामें खाना सोना
बोलना बैठनादि था उनका सबका त्यागन करे आत्मा-
में भले प्रकार मनकूं स्थित करके कुछ चिंतवन न करे
पूर्वाभ्यास रजोगुणके वशमें मन जो फिर चले तो प्रत्या-
हार करके अर्थात् जिस जिस विषयमें मन जावे वही
वहींसे रोककर मनकूं वश करे अर्थात् आत्माके विषय
स्थिर करे इस प्रकार अभ्यास करते करते रजोगुणका
क्षय होनेसे योग सुख प्राप्त होजाता है शान्त होगया है
रजोगुण जिसका इसी हेतुसे शान्त है मन जिसका प्राप्त
हुआहै ब्रह्मतत्त्व जिसकूं उसकूं समाधिजन्य सुख अपने
आप प्राप्त होता है ऐसे सदा अभ्यास करते हुए योगी
दूर होगये हैं पाप जिसके वो अनायास सुखपूर्वक
ब्रह्मतत्त्वकूं प्राप्त होता है फिर कृतार्थ होजाता है सो
योगी सब भूतोंमें अपने आत्माकूं और सब भूतोंकूं
अपने आत्माके विषय देखता है। सारे सम दृष्टिहै
जिसके उसकूं श्रीभगवान् कहते हैं कि जो मुझकूं सर्वत्र
देखताहै उसकूं मैं सदा अपरोक्ष हूं वो मुझसे पृथक् नहीं जो
मुझकूं इसप्रकार जानताहै जैसे उसकी इच्छा हो कर्म
त्यागकरके तो याज्ञवल्क्यवत् कर्म करता हुआ जनकवत्
निषेधकर्म करता हुआ दत्तात्रेयवत् वर तो निश्चय मुक्त
होगा वो सर्व प्रकार मेरे विषय वर्तता है मुझसे पृथक्

कुछ नहीं जानता जैसे आपकूं दुःख सुख होते हैं दूसरे के दुर्वाक्य बोलनेमें दुःख स्तुति करने में सुख ऐसेही अपनी उपमा करके सबकूं सम देखे किसी कूं दुःख न दे ऐसा पुरुष मुझकूं परम सम्मत है यो योगका लक्षण श्रीभगवान् ने अर्जुन कूं कहा अर्जुन इस योगकूं असम्भव मानते हुए बोलते भये हे परमेश्वर ! समता करके अर्थात् मनकी दो गति लय विक्षेप उनकूं जय-करके केवल आत्माकार अवस्थान करके जो जो योग आपने कहा इस योग की दीर्घकाल जो स्थिति उसकूं नहीं देखता हूं किस हेतुसे मनकूं चंचल होनेसे हे कृष्ण-चन्द्र ! मन चंचलहै स्वभावहीसे चपलहै प्रमथन शील-वाला इन्द्रियों कूं क्षोभ करनेवाला बलवालाहै विचार-करके भी जीतनेके योग्य नहीं प्रतीत होता विषय वासना करके अनादि का विषयों के साथ बँधा हुआ है इस हेतुसे दुर्भेदहै जैसे महाराज आकाशमें पवन चल-ताहै उसकूं घटादि में रोकना कठिनहै ऐसे मनका निग्र-ह कठिन जानताहूँ वशिष्ठजी भी कहते हैं समुद्र का पान करजाना सुमेरुकूं उखाड़ लेना आदि जो बहुत क-ठिन प्रतीत होते हैं सो होजाते हैं परन्तु मनका निग्रह कठिनहै इस बातकूं अंगीकार करके मनके निग्रहका उपाय दिखाते हुए श्रीभगवान् बोलते भये हे अर्जुन जोतुमने कहा सो सत्य है मन ऐसाही है परन्तु मनकी दो गति हैं लय १ विक्षेप २ सो लयकूं तो अभ्यासकरके अर्थात

आत्माकार प्रत्यवृत्ति करके जय करना और विक्षेप कूं वैराग्यकरके अर्थात् विषयोंमें दोषदृष्टि करके जय करना इन दो उपायोंसे निश्चय मनका निग्रह होजाता है अन्तःकरण की वृत्तियोंका सूक्ष्म होजाना इसीका नाम मनोनिग्रह है जिन्होंने देहादि नहीं वश किये हैं उनकूं तो यो योग कठिनहै जिन्होंने अभ्यास वैराग्य करके मनकूं वश करलिया है उनकूं यो योग इसी उपायकरके सहजहै। अर्जुन बूझते हैं—महाराज ! प्रथम तो कोई पुरुष इस योगमें श्रद्धा करके प्रवृत्त हुआ परन्तु पीछे उसने भले प्रकार प्रयत्न न किया शिथिलाऽभ्यास रहा योगसे चित्त चलकर विषयमें प्रवृत्त होगया तात्पर्य मन्दवैराग्य होगया अथवा अभ्यास करते करते देहका बीचमें पात होगया वो पुरुष योगका फल जो ज्ञान उसकूं नहीं प्राप्त होकर किस गतिकूं प्राप्त होताहै क्योंकि कर्मोके फलकूं परमेश्वर में अर्पण करने से अथवा कर्मोंका अनुष्ठान न करनेसे स्वर्गादिकी प्राप्ति जो फल सो तो उसकूं होंगे नहीं ज्ञानके न होनेसे मुक्त न होगा दोनों तरफ से भ्रष्ट हुआ। महाराज! कहीं छिन्ना ऽभ्रवत् योगही में नाश होजाताहै हे परमेश्वर!आप सर्वज्ञ हो इसका उत्तर देसकते हो श्रीभगवान् बोलते भये हे अर्जुन!इस लोकमें तो उसका जो दोनों मार्गसे भ्रष्ट होना है और परलोकमें जो नरककी प्राप्ति ये दोनों उसके नहींक्योंकि अच्छा कर्म करनेवाला कोई भी दुर्गति कूं नहीं

प्राप्त होता और जो तो श्रद्धा करके योग में प्रवित्त होने-से शुभकारी है फिर उसकी क्या गति होती है इस अपेक्षा-में कहते हैं ब्रह्म लोकादि जो पुण्यकारी पुरुषों के भोग-स्थान उनकूं प्राप्त होकर और बहुत दिन वहां के भले प्रकार भोग भोगकर जो इसलोकमें पवित्र धनवाले पुरुष हैं उनके कुलमें वो योगभ्रष्ट जन्म लेताहै यह गति तो बड़े अभ्यास करनेवालेकी है और जिसके ज्ञानहोनेमें कुछ थो-ड़ीसी देररही थी वह बुद्धिमान् ब्रह्मनिष्ठ योगियोंके कुलमें जन्म लेता है इस लोकमें मुक्तिका हेतु होनेसे ऐसा जन्म होना बड़ा दुर्लभ है वो जो पूर्वदेहमें ब्रह्मविषय बुद्धि करके योग करताथा फिर वो दोनों कुलोंमेंसे किसी कुलमें उसी योग कूं प्राप्त होजाताहै फिर अधिकमुक्तिके लिये प्रयत्न करता है जो पराये वशभी हो तो भी पूर्वाभ्यास उसकूं विषयोंसे हटाकर ब्रह्मनिष्ठकर देता है इस अर्थकूं कैमुति-कन्याय करके दृढ़ करते हैं ज्ञानकी इच्छावाला जो नर कुछ ज्ञान इसकूं प्राप्त नहीं हुआथा और पापके वशसे योगभ्रष्ट भी हुआ परन्तु फिर काल पाकर जिसकी योग गति कि शब्दब्रह्मकूं उल्लंघ कर वर्तता है तात्पर्य वेदोंने प्रतिपादन किये जो स्वर्गादि फल उनका तिरस्कार करके उनसे अधिक फल जो ब्रह्मानन्द उसकूं अनुभव करता हुआ अपने आपकूं कृतकृत्य जानता है और जिन्होंने जन्म जन्ममें प्रयत्न करके दूर किये हैं पाप फिर पिछले

जन्म में सिद्धि होकर वे उस गतिकूं अर्थात् ब्रह्मानन्दकूं प्राप्त होवें तो इसमें क्या कहना है ❀ अब और प्रकारके विषयों में दोषदृष्टि पूर्वक जीवन्मुक्ति के साधन सुनो संसारी लोक दो पदार्थोंकूं विशेष कहते हैं धन १ स्त्री २ प्रसिद्ध है कि चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, मद, भेद, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, असूया, निन्दा, छलादि अनेक अनर्थ करके धन सिद्ध होता है और उसके कमा नेमें परदेशमें रहना नीचोंकी टहल करनी पराधीन रहना दि और रक्षा करनेमें चोर राजादि का भय और व्यय करने में उसके कम होनेका दुःख और नाशहोने में जो दुःख उसका लिखना क्या चाहिये सब जानते हैं तात्पर्य जिसके आदि मध्य अन्तमें क्लेशही क्लेश हैं ऐसे दुःखों के कारण धनकूं धिक्कार है और जो प्राकृत जीव धनसे स्त्री मदिरा मांस द्यूत राग द्वेष अभिमान अहंकारादि ऐसे ऐसे यहां अनर्थ कर कर नरकका सामान करते हैं वो व्यवस्था कहांतक लिखें तात्पर्य जितने पाप हैं सब धनसे होते हैं यो धन पापी विद्वान् विचारवान् से भी अनर्थ करादेता है इस बातकी सिद्धिमें श्रुति स्मृति इतिहास युक्ति आदि बहुत प्रमाण हैं इसके त्यागका अधिक माहात्म्य शास्त्रमें लिखा है संसारसमुद्रमें कान्ता कांचन दो आवर्त हैं तीनों भवन इनमें भ्रम रहे हैं जो इन दोनोंसे विरक्त हैं वो मनुष्यादि नहीं परमेश्वर हैं स्त्रीकी स्तुति

सुनो चांडालके घरके बराबर स्त्री हैं चांडालके घरमें मल मूत्र मांसादि पड़े रहते हैं द्वारेमें चिह्नके लिये अस्थि लगे रहते हैं अस्थिके खंभ चर्म्मकी रज्जुसे बँधे रहते हैं मकानके ऊपर चर्म पड़े रहते हैं जो उसके मकानकी यो व्यवस्था है तो विचारो कि उस मकानकी जो मोरी जहांकूं उस मकानका मल जाता है उसकी क्या उपमा देनी चाहिये विचारो स्त्रीमें ये सब वस्तु हैं वा नहीं स्त्रीका शरीर मकान वस्तु भीतर उसके मल-मूत्रादिका होना प्रसिद्ध है मुख द्वारवत् दांत अस्थि-वत् पैर हस्तादिमें अस्थि खम्भवत् नाड़ियोंसे बँधे हुए हैं शरीरके ऊपर चर्म है वा कुछ और है मोरीवत् उस शरीरमें मल मूत्र त्याग करनेके रस्ते हैं देखो उनकूं ऊपरसे देख २ यो जीव विना विचारके कैसा आनन्दित होता है वृथा नरकवत् मोरीमें डूबता है विचारो इससे सिवाय और क्या नरक होगा जो यो कहो कि हमकूं तो ये दोष नहीं फुरते बेशक हमभी जानते हैं कि ऐसे जीव जिनकूं विष्ठा मुरदेके मांसमें दोष नहीं फुरते उनके लिये अनेक प्रयत्न करते हैं प्राप्तिके समय अपनेकूं कृतकृत्य मानते हैं हमारी दृष्टिमें वेभी तो जीव हैं कुछ यो न समझना ऐसे सूकर कूकरही होते हैं मनुष्य भी बहुत ऐसे होते हैं अब विचारो मनुष्यशरीरमें और पशुमें क्या भेद हुआ हजारों जगह इन बातोंका प्रसंग है इस प्रसंगकूं बहुत क्या लिखें बुद्धिमान् जीवन्मु-

क्तिकी इच्छावाला इसी प्रकार सब पदार्थोंमें दोष दृष्टि करकर उनका संग न करे और वोही चांडालके घरका दृष्टान्त अपने शरीरमें कटावे अर्थात् चाण्डाल भी उस घरमें यो अध्यास नहीं करता मैं घरहूं यो अध्यास है कि मेरा घर है ऐसे अध्यास करनेसे तो वो चाण्डाल है और जो देहकूं ऐसा कहते हैं कि हम देह हैं अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री आदि वर्ण ब्रह्मचारी आदि आश्रमी पंडित धनवाले हैं विचारो यो देह चाण्डालके घरके बराबर है वा नहीं जब देहकूं यो कहामैं देहहूं फिर वो कौन हुआ तात्पर्य ऐसे विचार देहमेंसे अध्यासका त्याग करे भ्रमसे और पदार्थमें प्रतीत होना इसकूं अध्यास कहते हैं। वासना दो प्रकार की है-शुद्धा १ मलिना २ मुक्तिके लिये शास्त्र विहित अनुष्ठान करनेकी और श्रवणादिकी वासना शुद्धा १ भोगोंकी वासना और संसारमें प्रसिद्ध होनेकी वासना मलिना २ शुद्ध वासना मुक्तिकी हेतु हैं मलिन वासना जन्मकी हेतु है देहयात्राके लिये भिक्षादिका जो प्रयत्न करना यो ज्ञानीका बासना बंधका हेतु नहीं। श्रीभगवान् कहते हैं-जिसमें शरीरका निर्बाह होवे वो कर्म करता हुआ पापकूं नहीं प्राप्त होता ज्ञानीने शरीरयात्रासे सिवाय और बासनाका त्याग करना तीन बासना बहुत दुःख करके त्यागी जाती हैं देह बासना १ लोकवासना २ शास्त्रबासना ३ शरीरकं बहुत उबटने चंदनादि लगा-

लगाकर चिकना चांदना रखना और यो इच्छा रखनी कि यो शरीर सदा आरोग्य रहे यो देह वासना १ यों इच्छा रखनी कि, सब लोग मुझकूं भला कहें यो लोक वासना २ शास्त्र बासना दो प्रकारकी हैं एक तो बहुत पढ़ने सुननेकी इच्छा अर्थात् जाने इस शास्त्रमें क्या क्या है दूसरी जो कर्म जपादि करना शास्त्र विहित करना यों इच्छा रखनी यो शास्त्र वासना ३ इन करके युक्त जो पुरुष उसकूं ज्ञानी भी भले प्रकार नहीं होता तात्पर्य तीनों वासना किसीकी पूर्ण हुई न होंगी युक्तिसे विचार देखो वा गुरु शास्त्रसे निश्चय करलो और ये जो दो प्रकारहैं एक तो मनोनाश, नाश वासना क्षय १ और दूसरा सदा वेदान्तका श्रवणादि करना२इनका अविरोध सुनोजिसकूं संशय विपर्यय करके रहित भले प्रकार ज्ञान होगयाहै उसकूं तो मनोनाश वासना क्षय मुख्यहै श्रवणादिगौण हैं और जिसकूं भले प्रकार ज्ञान नहीं हुआ संशय विपर्ययहै उसकूं श्रवणादि मुख्यहै मनोनाशवासना क्षयगौणहै मनोनाशवासना क्षयके साधन सुनोवाशिष्ठमें लिखाहै जो जागता हुआ सुषुप्तिवत् रहे और जिसका जागना निर्वासन हो सो जीवन्मुक्त है। श्रीभगवान् कहतेहैं ज्ञानी सदा संतुष्टरहे मनादि कूं वश रक्खे मौन रहे मौनीके तात्पर्य कूं कोई नहीं पासकता बहुत लिखने से क्या प्रयोजनहै मौनमें बहुत सुख और लाभ हैं और मैं असंग हूं यो दृढ़ विश्वास रक्खे आत्मामें अर्पित

करीहै मनबुद्धि जिसने जिससे लोग उद्वेग न करैंजो लोगों से उद्वेग न करे सोभक्त मुझकूं प्याराहै भक्त स्थितप्रज्ञ गुणातीत शब्द करके बहुत प्रकार श्रीभगवान्ने जीवन्मुक्तके लक्षण कहे हैं। निस्पृही कोई नहीं आरम्भ जिसके किसीकूं नमस्कार न करनी न लेनी न किसीकी निन्दा स्तुति करनी समर्थ हुआ मिथ्या जानकर कर्मों का त्याग करदेना सर्पवत् बहुत पुरुषोंसे डरता रहे नरकवत् सन्मानसे डरता रहे मुरदेवत् स्त्रियोंसे डरता रहे किसी स्त्रीसे बात न करे पहली देखीहुईकूं स्मरण न करे स्त्रियोंकी कथा न कहे न सुने काष्ठकी और लिखीहुई कूं भी न देखे उसकूं देवता ब्राह्मण कहते हैं तात्पर्य जीवन्मुक्त कहतेहैं। ऐसे ऐसे और भी वाक्य हैं–हे युधिष्ठिर! मुक्तिमें जाति कारण नहीं शमदमादि गुण कारणहैं येशम दमादि गुण जो चाण्डालके भीहोंगेतो देवता उसकूंब्राह्मणकहतेहैं,जैसेस्वप्नमें प्रपंचप्रतीतहोताहै ऐसे जाग्रत प्रपञ्चका निश्चय करे जैसे बाजीगरके पदार्थोंमेंवासना नहीं होती ऐसा इन पदार्थोंकूं जानकर वासना न कर अपने कूं असङ्ग जाननेसे और संसारकी मिथ्याभाव निश्चय करनेसे शरीर कूं क्षणभंगुर जाननेसे वासनाका उदय नहीं होता जिसका निर्वासन मन है उसकूं कर्म और कर्मके फल स्वर्गादि समाधान करना मनका जपकरना आदि कुछ अपेक्षा नहीं आत्मानन्दसे

पृथक् सब इन्द्रजालवत् हैं जब ऐसा निश्चय हुआ फिर मन की वासना कहां जावे जन्म जरा व्याधि मृत्युमें दुःखही दुःख हैं फिर भी कुछ एक बार नहींबारम्बार दुःख उनका अनुसंधान करते हुए वासना का उदय नहीं होता कुसंगके त्यानेसे भी वासनाका उदय नहीं होता ज्ञानीने किसीका संग न करना यों हीं उनका मुक्तपदहै क्योंकि संगसे अशेष दोष होतेहैं योगारूढ़ भी कुसंग करनेसे पतित होजाताहै थोड़ी सिद्धिवाला जो कुसंगसे पतित होजावे तो इसमें क्या कहना है श्रीमद्भागवत में लिखाहै स्त्रीके संगी जो पुरुष हैं मुक्तिकी इच्छावाला उनका संग त्याग दे इन्द्रियों कूं शब्दादि विषयोंमें प्रवित्त न करे विचरे तो अकेला विचरे यदि एकान्त में बैठकर चित्तकूं अनन्त भगवान्में जोड़े जो सर्वथा संगत्यागा न जावे तो साधुवों का संग करे समस्त बासनाका त्याग कर देना चाहिये जो सब न त्यागी जावें तो मुक्तिकी बासना रक्खे स्त्रियोंका और स्त्री संगी पुरुषों का संग विद्वान् दूरसेही त्याग दे एकान्त में बैठकर आलस्य कूं त्याग करके स्वरूप का चिन्तवनकर स्त्रीका संग साक्षात् ऐसा अनर्थ नहीं करता जैसे स्त्रीके संगी का संग अनर्थ करता है दृष्टान्तयो है ज्येष्ठके महीनेमें दिनभर धूपमें चलाजावो वा खड़ारहो परंतु मरता नहीं उस धूपकरके तपाहुआ जो रेत उसमें बैठे रहनेसे निश्चय होता कि मरजावे इसी

प्रकार सब पदार्थोंकी सन्निधि ऐसा अनर्थ नहीं करती जैसा भोगीका संग अनर्थ करता है महज्जनोंका संग मुक्तिका हेतु है कामियों का संग नरकका हेतु है ऐसे ऐसे साधन करके युक्त जीव अपरोक्ष ज्ञान द्वारा निश्चय मुक्त हो जाता है ॥

दश आदमी नदी उतरे, पार जाकर संख्या करी कि कोई हममें डूबा तो नहीं जिसने संख्या करी उसने आपकूं न गिना फिर यो निश्चय करलिया कि हम दश थे एक डूबगया व आपको भूलकर रोने लगा उस समय कोई और पुरुष वहां आगया उसने बूझा कि तुम क्यों रोते हो कहा कि हम दश पारसे उतरे थे अब नव हैं एक नदीमें डूब गया उसने जो अपने मनमें संख्या करी तो दश प्रत्यक्ष हैं उसने कहा तुम शोक मतकरो दशवां है यो वाक्य सुनकर उसको निश्चय हुआ कि दशवां डूबानहीं कहीं इसने देखा है अपने आपकूं दशवां निश्चय नहीं किया इसकं तो परोक्ष ज्ञान कहते हैं फिर उसने कहा कि तू मेरे सामने संख्या कर तब फिर उसने वैसेही आपसे पृथक् नवक गिना आपकूं न गिना उसने कहा दशवां तू है तब उसने जाना कि निःसंदेह दशवांमैं हूं इसकूं अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं ऐसेही जिसने गुरु शास्त्रसे सुनकर यो निश्चय कर रक्खा है कि कोई ब्रह्म है आपकूं निश्चय नहीं किया कि मैं ब्रह्महूं इसक तो परोक्षज्ञान कहते हैं यो

परोक्षज्ञान गुरू शास्त्र पूर्वक जिसकूं है सो ज्ञान बुद्धि-पूर्वक उसके किये हुए समस्त पापोंकूं अग्निवत् भस्म करदेताहै जब यो निश्चय हुआ कि मैंही ब्रह्म हूं इसकूं अपरोक्षज्ञान कहते हैं यो अपरोक्ष ज्ञान गुरु शास्त्र पूर्वक जिसकूं है सो ज्ञानमूलाज्ञान सहित समस्त संसारकूं दूर करदेताहै अर्थात् उसका जन्म नहीं होता वो निरतिशयानन्द कूं प्राप्त होताहै इस प्रकार परमात्माका स्वरूप चिन्तवन करनेसे तृप्ति तो नहीं होती परन्तु ग्रन्थके विस्तारके भयसे अलम् परिपूर्णम् परमेश्वरकूं वारम्वार नमस्कार है कैसे वे परमेश्वर हैं जिन्होंने गोपियों के वस्त्रहरेहैं ऐसे जो श्रीकृष्णचन्द्र महाराज उनमें प्रथम दासोऽहम् यो मेरी बुद्धि थी सो महाराज ने अपने स्वभावके अनुसार मेरा भेदाकार हरलिया अब सोऽहम् यो शेषबुद्धि होगई बाम्बार महाराजकूं इस हेतु से नमस्कार करताहूं कि मुझकूं ऐसा निश्चय होताहै व्यतीत जन्मोंमें महाराज कूं कभी नमस्कार नहीं किया क्योंकि जो ये जन्म हुआ और इस जन्म में जो नमस्कार किया तो आगेकूं जन्म नहीं होवेगा स्थूलादि शरीरोंके अभाव होने से नमस्कार कौन करेगा इसलिये पिछिले अपराधके क्षमाके लिये और आगेकूं नमस्कार न करना इस कृतघ्नता महादोषदूर होनेके लिये इसी जन्ममें बाम्बार नमस्कार करताहूं श्रीकृष्णच-

न्द्राय नमोनमः ३ जिसकी देवता में परमभक्ति और जैसी देवता में वैसेही गुरु में है उस आत्माकूं कहे हुए ये अर्थ प्रकाश होंगे अन्यकूं नहीं होंगे यो श्रुतिका अर्थ है श्रीमत्परमहंस परिब्राज स्वामी मलूकगिरिजी महाराज उनके चरण कमलों का पूजनेवाला अनुचर शिष्य आनन्दगिरि नामने यह ग्रन्थ आनन्दामृतवर्षिणी मुन्शी बंशीधरजी जिनके किञ्चित् गुण प्रथम अध्याय में लिखे हैं उनकूं सुखपूर्वक ब्रह्मतत्त्व जानने के लिये उनका श्रद्धाभक्तिपूर्वक प्रार्थना से अति सुगम अति पवित्र अतिगुप्त सब विद्या धर्मोंमें श्रेष्ठ जो इसमें ब्रह्मतत्त्व सो सुखपूर्वक जानाजावे प्रत्यक्ष फलहै जिसमें सो आज द्वितीय ज्येष्ठ शुक्लपक्ष द्वितीया रविवार संवत् उन्नीस सौ पन्द्रह १९१५में विनिर्मित करके समाप्त किया पढ़ने सुनने वालोंकूं शान्तिहो शुभहो । हरिः ॐतत्सत्, हरिः ॐ तत्सत्, हरिः ॐ तत्सत् । श्रीकृष्णचन्द्राय नमोनमः ।

इति श्रीआनन्दाऽमृतवर्षिण्यांदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इयमानन्दाऽमृतवर्षिणी समाप्ता ।

अथ प्रश्नोत्तरीप्रारम्भः ।

अपारसंसारसमुद्रमध्येनिमज्जतोमेशरणंकिमस्ति ॥
गुरोकृपालोकृपयावदैतद्विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका ॥१॥
बद्धोहिकोयोविषयानुरागःकोवाविमुक्तोविषयेविरक्तः॥को
वास्तिघोरोनरकःस्वदेहस्तृष्णाक्षयःस्वर्गपदंकिमस्ति२॥
संसारहृत्कस्तुनिजात्मबोधःकोमोक्षहेतुः प्रथितः स एव॥
द्वारंकिमेकंनरकस्यनारीकास्वर्गदाप्राणभृतामहिंसा ॥३॥
शेतेसुखंकस्तुसमाधिनिष्ठोजागर्त्तिकोवासदसद्विवेकी।केश
त्रवःसन्तिनिजेंद्रियाणिकान्येवमित्राणिजितानितानि४॥
कोवादरिद्रोहिविशालतृष्णःश्रीमांश्चकोयस्यसमस्ततोषः
जीवन्मृतःकस्तुनिरुद्यमोयःकावामृतास्यात्सुखदादुराशा
॥५॥ पाशोहिकोयोममताभिधानंसंमोहयत्येवसुरेवकास्त्री
कोवामहांधोमदनातुरोयोमृत्युश्चकोवाऽपयशःस्वकीयम्६
कोवागुरुर्योहिहितोपदेष्टाशिष्यस्तुकोयोगुरुभक्तएव॥को
दीर्घरोगोभवएवसाधोकिमौषधंतस्यविचारएव।७ किंभूष
णाद्भूषणमस्तिशीलंतीर्थंपरंकिंस्वमनोविशुद्धम्॥किमत्रहे
यंकनकञ्चकान्तासेव्यंसदाकिंगुरुवेदवाक्यम्॥८॥केहेतवो
ब्रह्मगतेस्तुसन्तिसत्सङ्गतिर्दातिविचारतोषाः॥ केसन्तिस
न्तोऽखिलवीतरागाअपास्तमोहाःशिवतत्त्वनिष्ठाः।९। को
वाज्वरःप्राणभृतांहिचिन्तामूर्खोऽस्तिकोयस्तुविवेकहीनः।
कार्याप्रियाकाशिवविष्णुभक्तिःकिंजीवनंदोषविवर्जितंयत
॥१०॥ विद्याहिका ब्रह्मगतिप्रदायाबोधोऽस्तिकोयस्तुवि-

मुक्तिहेतुः ॥ कोलाभआत्मावगमोहियोवैजितंजगत्केनम-
नोहियेन ॥११॥ शूरान्महाशूरतरोऽस्तिकोवामनोजबाणै
र्व्यथितोनयस्तु ॥ प्राज्ञोऽतिधीरश्चसमोऽस्तिकोवाप्राप्तोन
मोहंललनाकटाक्षैः ॥१२॥ विषाद्विषंकिंविषयाःसमस्ता-
दुःखीसदाकोविषयानुरागी ॥धन्योऽस्तिकोयस्तुपरोपका
रीकःपूजनीयोननुतत्त्वनिष्ठः॥१३॥सर्वास्ववस्थास्वपिकिं
नकार्यंकिंवाविधेयंविदुषाप्रयत्नात् ॥ स्नेहंचपापंपठनंच-
धर्मःसंसारमूलंहिकिमस्त्यविद्या ॥१४॥ विद्वान्महाविद्व-
तमोऽस्तिकोवानार्यांपिशाच्यानचवंचितोयः ॥ काशृंख-
लाप्राणभृताश्चनारीदिव्यंव्रतंकिश्चनिरस्तदैन्यम् १५ज्ञातुं-
नशक्यंहिकिमस्तिशैवैर्योषिन्मनोयच्चरितंतदीयम् ॥ का
दुस्त्यजासर्वजनैर्दुराशाविद्याविहीनःपशुरस्तिको वा १६
वासोनसंगः सहकैर्विधेयोमूर्खैश्च पापैश्चखलैश्चनीचैः ॥
मुमुक्षुणाकिंत्वरितंविधेयंसत्संगतिर्निर्ममतेशभक्तिः॥१७॥
लघुत्वमूलंचकिमर्थितैवगुरुत्वबीजंवदयाचनंकिम्॥जातो
स्तिकोयस्यपुनर्नजन्मकोवामृतोयस्यपुनर्नमृत्युः ॥१८॥
मूकस्तुकोवाबधिरश्चकोवा युक्तंनवक्तुंसमयेसमर्थः ॥ तथ्यं
सुपथ्यंनशृणोतिवाक्यंविश्वासपात्रंनकिमस्तिनारी॥१९॥
तत्त्वंकिमेकंशिवमद्वितीयंकिमुत्तमंसच्चरितंवदन्ति॥किंक-
र्मकृत्वानहिशोचनीयंकामारिकंसारिसमर्चनाख्यम्॥२०॥
शत्रोर्महाशत्रुतमोऽस्तिकोवाकामः सकोपानृतलोभतृष्णः
नपूर्यतेकोविषयैःसएवकिंदुःखमूलंममताभिधानम्॥२१॥
किम्मण्डनसाक्षरतामुखस्यसत्यंचकिंभूतहितंसदेव।त्याज्यं

सुखंकिंस्त्रियमेवसम्यग्देयंपरंकिंत्वभयंसदैव॥२२॥कस्या
स्तिनाशेमनसोहिमोक्षःक्वसर्वथानास्तिभयंविमुक्तौ ॥ श-
ल्यंपरंकिं निजमूर्खतैवकेकेह्युपास्यागुरवश्चवृद्धाः॥२३॥
उपस्थिते प्राणहरेकृतांतेकिमाशुकार्यंसुधियाप्रयत्नात् ॥
वाक्कायचित्तैःसुखदंयमघ्नंमुरारिपादाम्बुजमेवचिंत्यम् २४
केदस्यवःसन्तिकुवासनाख्याःकःशोभतेयःसदसिप्रविद्यः
॥ मातेवकायासुखदासुविद्याकिमेधतेदानवशात्सुविद्या
॥ २५ ॥ कुतोहि भीतिः सततंविधेयालोकापवादाद्भव-
काननाच्च ॥ कोवास्ति बंधुःपितरौचकौवाविपत्सहायौप-
रिपालकौयौ॥२६॥बुद्ध्वा नबोद्धुंपरिशिष्यतेकिंशिवंप्र-
शांतंसुखबोधरूपम् ॥ ज्ञातेतुकस्मिन्विदितंजगत्स्यात्स-
र्वात्मकेब्रह्मणिपूर्णरूपे ॥ २७ ॥ किंदुर्लभंसद्गुरुरस्ति-
लोकेसत्संगतिर्ब्रह्मविचारणंच ॥ त्यागोहि सर्वस्यशिवा-
त्मबोधःकिंदुर्जयंसर्वजनैर्मनोजः ॥ २८ ॥ पशोः पशु-
कोनकरोतिधर्मंप्राधीतशास्त्रोपिनचात्मबोधः ॥ किंतद्विषं
यंभातिसुधोपमंस्त्रीकेशत्रवोमित्रवदात्मजाद्याः ॥ २९ ॥
विद्युच्चलंकिंधनयौवनायुर्दानंपरंकिंचसुपात्रदत्तम् ॥कण्ठं-
गते स्प्यसुभिर्नकार्य्यंकिंकिंविधेयंमलिनंशिवार्चा ॥३०॥
किंकर्म यत्प्रीतिकरंमुरारेःक्वास्थानकार्य्यासततंभवाब्धौ॥
अहर्निशंकिंपरिचिंतनीयंसंसारमिथ्यात्वशिवात्मतत्त्वम्
॥ ३१ ॥ कंठं गतावाश्रवणंगतावाप्रश्नोत्तराख्यामणि-
रत्नमाला ॥ तनेतुमोदंविदुषांसुरम्यारमेशगौरीशकथेव-
सद्यः ॥ ३२ ॥

इति प्रश्नोत्तरी समाप्ता ॥

पंचदशी-श्लोकाः ।

ऐहिकामुष्मिकव्रातसिद्धैर्मुक्तेश्चसिद्धये॥बहुकृत्यंपुरा-
ण्याभूत्तत्सर्वमधुनाकृतम् ॥४०॥ तदेतत्कृतकृत्यात्वंप्रति-
योगपुरस्सरम्॥अनुसंदधदेवायमेवंतृप्यतिनित्यशः ४१॥
दुःखिनोऽज्ञास्संसरन्तुकामंपुत्राद्यपेक्षया॥परमानन्दपूर्णो-
ऽहंसंसरामिकिमिच्छया ॥४२॥ अनुतिष्ठन्तिकर्माणिपर-
लोकयियासवः । सर्वलोकात्मकःकस्मादनुतिष्ठामिकिं-
कथम् ॥४३॥ वाचयन्त्वथशास्त्राणिवेदानध्यापयन्तुवा ॥
येत्राधिकारिणोमेतुना धिकारोक्रियत्वतः ॥४४॥ निद्राभि-
क्षेस्नानशौचेनेच्छामिनकरोमिच ॥ द्रष्टारश्चेत्कल्पयंति-
किंमेस्यादन्यकल्पनात् ॥४५॥ गुंजापुंजादिदह्येतनान्या-
रोपितवह्निना ॥ नान्यारोपितसंसारधर्म्मानेवमहंभजे
॥ ४६ ॥ शृण्वंत्वज्ञाततत्त्वास्ते जानन्कस्माच्छृणोम्य-
हम् ॥ मन्यन्तांसंशयापन्नानमन्येऽहमसंशयः ॥ ४७ ॥
विपर्यस्तोनिदिध्यासेत्किंध्यानमविपर्यये ॥ देहात्मत्व-
विपर्यासंनकदाचिद्भजाम्यहम् ॥ ४८ ॥ अहंमनुष्यइत्या-
दिव्यवहारोविनाप्यमुम् ॥ विपर्यासंचिराभ्यस्तवासना-
तोऽवकल्पते ॥४९॥ प्रारब्धकर्म्मणिक्षीणेव्यवहारोनिव-
र्त्तते ॥ कर्म्माक्षयेत्वसौनैवशाम्येद्ध्यानसहस्रतः५०॥वि-
रलत्वंव्यवहृतेरिष्टंचेद्ध्यानमस्तुते ॥ अबाधिकाव्यवहृ-
तिंपश्यन्ध्यायाम्यहंकुतः ॥५१॥ विक्षेपोनास्तियस्मा-
न्मेनसमाधिस्ततोमम ॥ विक्षेपोवासमाधिर्वामनसः
स्याद्विकारिणः ॥ ५२ ॥ नित्यात्मभवरूपस्य-

कोमेवानुभवःपृथक् ॥ कृतंकृत्यंप्रापणीयंप्राप्तमित्येवनि-
श्चयः ॥ ५३ ॥ व्यवहारोलौकिकोवाशास्त्रीयोवान्यथा-
पिवा ॥ ममकर्तुरलेपस्ययथारब्धंप्रवर्त्तताम् ॥ ५४ ॥
अथवाकृतकृत्योऽपिलोकानुग्रहकाम्यया ॥ शास्त्रीयेणैव-
मार्गेणवर्त्तेऽहंकाममक्षितः ॥ ५५ ॥ देवार्चनस्नानशौच-
भिक्षादौवर्त्ततांवपुः ॥ तारंजपतुवाक्तद्वत्पठित्वाम्नाय-
मस्तकम् ॥ ५६ ॥ विष्णुंध्ययातुधीर्यद्वाब्रह्मानन्देवि
लीयताम् ॥ साक्ष्यहं किंचिदप्यत्रनकुर्वेनापिकारये ५७
कृतकृत्यतयातृप्तःप्राप्तप्राप्यतयापुनः ॥ तृप्यन्नेवंस्वमन-
सामन्यतेसौनिरन्तरम् ५८ धन्योऽहंन्योऽहंनित्यंस्वा-
त्मानमंजसावेद्मि ॥ धन्योऽहंधन्योऽहंब्रह्मानन्दोवि-
भातिमेस्पष्टम् ॥ ५९ ॥ धन्योऽहंधन्योहंदुःखंसांसारि-
कंनवीक्षसे चाऽद्य ॥ धन्योऽहंधन्योऽहंस्वस्याज्ञानंपला-
यितंक्कापि ॥ ६० ॥ धन्योऽहंधन्योऽहंकर्त्तव्यं मेनविद्य-
तेकिंचित् ॥ धन्योऽहंधन्योऽहंप्राप्तव्यंसर्वमद्यसम्पन्नम्
॥६१॥धन्योऽहंधन्योऽहंतृप्तेर्मेकोपमाभवेल्लोके ॥ धन्योहं
धन्योऽहंधन्योधन्यःपुनःपुनर्धन्यः ॥ ६२ ॥ अहोपुण्य-
महोपुण्यं फलितं फलितंदृढम् ॥ अस्यपुण्यस्यसम्पत्तेर-
होवयमहोवयम् ॥ ६३ ॥ अहोशास्त्रमहोशास्त्रमहोगुरु-
रहोगुरुः ॥ अहोज्ञानमहोज्ञानमहोसुख महोसुखम्॥६४॥

इति ॥

पुस्तकें मिलने के स्थान

१) खेमराज श्रीकृष्णदास,
श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
खेतवाडी, मुंबई - ४०० ००४.

२) खेमराज श्रीकृष्णदास,
६६, हडपसर इण्डस्ट्रिअल इस्टेट
पुणे - ४११ ०१३.

३) गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस,
व बुक डिपो,
अहिल्याबाई चौक, कल्याण
(जि. ठाणे - महाराष्ट्र)

४) खेमराज श्रीकृष्णदास,
चौक - वाराणसी (उ.प्र.)

इति

आनन्दामृतवर्षिणी

समाप्ता ।

मुद्रक एवं प्रकाशक:

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS